त्रिफला

लेखक

रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार

मार्च १६४२

विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

प्रथम संस्करण] [मूल्य डेढ़ रुपया

जिसने अपना तन मन धन आत्म-सर्वस्व आयुर्वेद के लिए
अर्पित कर दिया है। ऐसे तपोधन, ज्ञानवृद्ध, इस
युग के आयुर्वैदिक ऋषि आचार्य श्री यादव
जी त्रीकम जी को सादर समर्पित।

रमेश बेदी

प्राक्कथन

मुझे श्रीरामेश बेदी जी लिखित त्रिफला पुस्तक मुद्रण से पहले ही पढ़नेका अवसर मिला। पुस्तककी शैली देख कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। आयुर्वैदिक वनस्पतियोंका इस दृष्टिकोणसे अध्ययन एक नई बात है और यह अपनी श्रेणीमें पहली पुस्तक है। मैं चाहता हूँ कि इस प्रकारकी पुस्तकें अन्य वनस्पतियों पर भी लिखी जाएं। श्री रामेश बेदीने इस कार्यको हाथमें लिया है। वे इसी प्रकार अंजीर, आक, निम्बु, नीम, कुटज, लशुन, एरण्ड, तुलसी आदि पर भी पृथक्-पृथक् पुस्तकें निकालनेकी आयोजना कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक गम्भीर और विस्तृत अध्ययनके बाद लिखी गई है। श्री रामेश बेदी छह वर्ष तक गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ीकी वनस्पति वाटिकाके अध्यक्ष रहे हैं और विद्यार्थी जीवनसे ही वनस्पतियोंमें विशेष रुचि रखते चले आए हैं। इनका अध्ययन प्रशस्त है। इस विषय पर बेदी जी अधिकार पूर्वक लिख सकते हैं।

यह पुस्तक विद्यार्थियों, अध्यापकों, वैद्यों और अन्वेषण-का कार्य करने वालोंके लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। आयुर्वेद विद्यालयों और विद्यापीठको यह पुस्तक पाठ्य क्रममें रखनी चाहिए जिससे विद्यार्थियोंको लाभ हो और लेखकका समुचित प्रोत्साहन हो।

प्रसाद भवन	शिव शर्मा
लाहौर १२-११-४१	प्रधानमंत्री, आयुर्वेद महामंडल।

भूमिका

आयुर्वेदके विद्यार्थियोंको द्रव्यगुणकी जानकारीके लिए जो निघण्टु ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं वे प्रारम्भ करने वाले विद्यार्थियोंके लिए वास्तवमें दुरूह और दुर्गम्य होते हैं। जिन आयुर्वेद विद्यालयोंमें केवल संस्कृत या हिन्दीके ही पाठ्यग्रंथ हैं उनमें आधुनिक विज्ञानके प्रकाशको प्रायः कोई स्थान नहीं दिया जाता और विद्यार्थियोंको निघण्टुके श्लोक मात्र घुटवा दिये जाते हैं।

औषधियोंकी प्रत्येक अवस्थाका ज्ञान विद्यार्थियोंको अवश्य होना चाहिए। औषधियोंकी विस्तृत जानकारी प्राप्त करनेके लिए प्रत्येक औषधिके सम्बन्धमें निम्न लिखित बातों का ज्ञान विद्यार्थियोंको होना आवश्यक है।

१ नाम—हिन्दी, संस्कृत, अंगरेज़ी, लैटिन और भारतीय प्रान्तीय भाषाओंके नाम तथा वनस्पतियोंके संस्कृत पर्यायोंका अर्थोंके अनुसार श्रेणीकरण।

२ प्राप्ति स्थान—प्राकृतिक अवस्थाओंमें पौधा किन-किन स्थानों और परिस्थितियों उगता है और उसका भारतमें विस्तार कहाँ-कहाँ है।

३ वानस्पतिक वर्णन—आधुनिक वनस्पति शास्त्रके अनुसार पौधेके फल, फूल, पत्र आदि प्रत्येक भागका

विशद् वर्णन, जिसकी सहायतासे विद्यार्थी प्रकृतिमें पौधेको सुगमतासे पहिचान सके।

४ इतिहास—पौधेका मौलिक उद्भव स्थान संसारमें किस जगह है। वहाँसे यह दूसरे देशोंमें कैसे फैला तथा भारतमें कब आया अथवा भारतसे बाहर कब और कैसे गया। चिकित्सा रूपमें पौधेका उपयोग करनेका ऐतिहासिक वर्णन।

५ भेद—बहुतसे पौधे आकृतिमें एक दूसरेसे मिलते जुलते हैं परन्तु चिकित्सा सम्बन्धी गुण उनमें भिन्न-भिन्न होते हैं। इस प्रकारके भेदोंका स्पष्ट ज्ञान।

६ रासायनिक विश्लेषण—रासायनिक विश्लेषण करनेसे औषधका क्रियाशील पदार्थ पृथक् प्राप्त किया जाता है। उस क्रियाशील पदार्थके कारण ही औषधमें ग्राही, कृमि-नाशक, संज्ञाहर आदि गुण रहते हैं। औषधियोंके विविध अङ्गोंके रासायनिक विश्लेषण द्वारा प्राप्त क्रियाशील तत्वोंका ज्ञान।

७ आयुर्वेदिक मतानुसार गुण—भावप्रकाश, कैय-देव, धन्वतरि और राजनिघण्टु आदि प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंमें प्रतिपादित औषधके गुणों सम्बन्धी श्लोकोंका ज्ञान।

८ उपयोगी भाग—पौधेका कौन-सा भाग व्यवहार में आता है।

९ संग्रह—किस ऋतु में वनस्पति ली जानी चाहिए और किन बातोंका ध्यान रखते हुए संग्रह करके रखनी चाहिए।

१० मात्रा—प्रयोगमें आने वाले औषधके विभिन्न भागोंकी मात्रा।

११ योग—औषधके प्रसिद्ध शास्त्रीय और व्यवहार में आने वाले अनुभूत योग और उनका मात्रा।

१२ सामान्य उपयोग—वनस्पतिके प्रत्येक भागका चिकित्सासे भिन्न कार्यके लिए क्या उपयोग होता है।

१३ प्रभाव—शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्गों और स्थानों पर औषधका किस प्रकार और क्या प्रभाव होता है। प्रयोग शालाओंके नवीन परीक्षणोंका ज्ञान।

१४ चिकित्सोपयोग—चिकित्सा रूपमें औषधका उपयोग किस तरह होता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि प्राचीन संस्कृत लेखकों तथा आधुनिक अन्वेषकोंने औषध-को रोगोंकी चिकित्सामें किस तरह उपयोग किया है।

१५ कृषि—पौधेको खेती करनेके सम्बन्ध में टिप्पणियाँ।

१६ व्यापारिक महत्व—औषधके यातायात और व्यापारिक उपयोगिता सम्बन्धी साधारण ज्ञान।

१७ सहायक ग्रंथ—उपर्युक्त बातोंके ज्ञानके लिए किन किन ग्रन्थोंसे सहायता मिल सकती है।

जहाँ तक मेरा ज्ञान है, भारतीय वनस्पतियों पर पाश्चात्य और पौरस्त्य दोनों दृष्टिओंसे समन्वयात्मक अध्ययन अब तक नहीं किया गया है और मेरा विश्वास है कि इस चीज़की अत्यन्त आवश्यकता है। आजकल प्रत्येक आयुर्वैदिक कौलेज, विद्यार्थी और वैद्यकी यह मांग है कि उन्हे आयुर्वेदके इस महत्वपूर्ण परन्तु उपेक्षित अङ्ग वानस्पतिक औषधियों पर तुलनात्मक साहित्यकी आवश्यकता है। हिन्दी भाषामें इस विषयके अच्छे साहित्यके अभावमें आयुर्वेद विद्यालयोंके छात्र और कविराज निघण्टुओंके श्लोक रट रट कर वास्तवमें ऊब गये हैं।

अपने विद्यार्थी कालमें मैंने स्वयं इस कठिनाईको अनुभव किया है और उसी समयसे वानस्पतिक औषधियोंकी ओर मेरा ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित हुआ। सन् १९३९ से वनस्पतियोंके सम्बन्धमें मैं विशेष अध्ययन कर रहा हूँ। वनस्पतियोंके सम्बन्धमें मैं विविध पत्र पत्रिकाओंमें भी प्रायः लिखता रहा हूँ। मेरी इच्छा थी कि वनस्पतियों की विस्तृत जानकारी देने वाला एक बृहद् ग्रंथ प्रकाशित किया जाय जिसमें ऊपर लिखे सब विषयोंका समावेश हो। मैंने इस प्रकारकी एक पुस्तक 'भारतीय द्रव्य गुण' लिखी भी है परन्तु कागज़की इस मंहगाईके दिनोंमें कोई भी ऐसा बड़ा कार्य छपाना सुगम नहीं। इस लिए मैं चाहता हूँ कि 'त्रिफला' की तरह अंजीर, अमलतास,

आक, एरण्ड, कुटज, घृतकुमारी, खदिर, धतूरा, भांग, लशुन, तुलसी, पपीता, निम्बु नीम, सोंठ, मरिच, पिप्पली आदि पर भी छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित की जांय। प्रत्येक पुस्तकमें उस वनस्पति विषयक प्राचीन और आधुनिक अन्वेषकोंके अध्ययनोंका विस्तृत वर्णन होगा। उन पुस्तकों पर गण्यमान्य विद्वानोंकी आलोचना ले ली जायगी और उसके अनुसार जो परिवर्तन करने आवश्यक होंगे, करके सब छोटी पुस्तकोंका एक बृहद् ग्रंथ रूपमें संग्रह 'भारतीय द्रव्य गुण' नामसे छाप दिया जायगा। एक-एक वनस्पति पर छोटी-छोटी पुस्तकें छापनेके लिए मैं प्रकाशकोंका सहयोग चाहता हूँ। इस विषयमें जो सज्जन थोड़ी बहुत दिलचस्पी रखते हों वे मुझसे पत्र व्यवहार कर सकते हैं।

यह पुस्तक त्रुटियोंसे शून्य नहीं है मैं स्वीकार करता हूँ। पाठकों से मैं प्रार्थना करना चाहूँगा कि जो त्रुटियां उन्हें दृष्टिगोचर हों मुझे सूचित करनेकी कृपा करें जिससे अगले संस्करणमें उन्हें दूर किया जा सके।

उन सब विद्वानोंका मैं आभारी हूँ जिनके ग्रन्थोंसे मैंने इस पुस्तकमें कुछ भी सहायता ली है।

हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट,
बादामी बाग़, लाहौर।
शरत्पूर्णिमा १९४१

रामेश वेदी

विषय सूची

हरड़

बहेड़ा

आंवला

त्रिफला

चित्र परिचय

दोनों चित्र हरड़के हैं। पहिला चित्र बाज़ारमें अधिक मिलने वाली मामूली क़िस्मकी हरड़ है। संस्कृत लेखकोंके सात भेदोंमेंसे हमने इसे पूतना नाम दिया है। इसमें छिलका पतला, गूदा कम और गुठली बड़ी होती है। इसका वैज्ञानिक भाषामें नाम टर्मिनेलिआ साइट्रीना (Terminalia citrina Roxb.) है।

दूसरा चित्र गुरुकुल कांगड़ीके आयुर्वेदिक कौलेजसे संबन्धित वनस्पति वाटिका (Botanical garden) में उगे हुए पौधेका है। संस्कृत लेखकोंके अनुसार इसका नाम विजया है। वैज्ञानिक भाषामें इसका नाम टर्मिनेलिया चिबुला (Terminalia chebula, Willd.) है।

दोनों पौधोंके पत्तेके रचना भेदको ध्यानसे देखिए। विजयाके पत्तोंके पीछे पत्रवृन्त पर दो ग्रन्थियाँ स्पष्ट उभारी हुई हैं। पूतनामें ये नहीं हैं। पूतनाके पत्रवृन्तके सामने दो छोटे चिन्ह या उभार हैं।

हरड़के अन्य भेदोंके चित्र और नमूने पाठक हमें भेजेंगे तो उन्हें हम सधन्यवाद छाप देंगे।
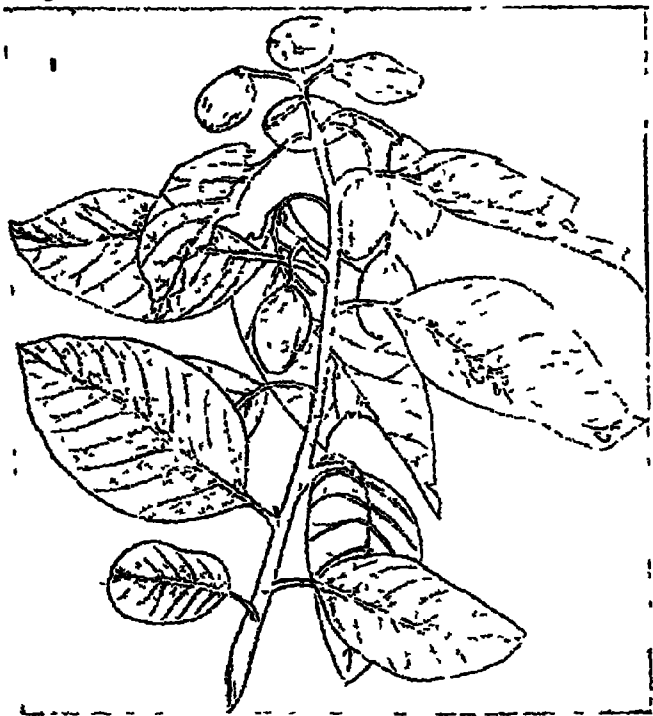
चित्र १—हर्रा (पूतना)

परिचय-ज्ञापक नाम—हरीतकी (रंगमें हरेसे रंगकी होनेसे) ।

गुण-प्रकाशक संज्ञा—हरीतकी (सर्वरोगान् हरते, सब रोगोंको दूर करने वाली); अभया (अभयं सर्वं रोगेभ्यो भवत्याशुश्च शाश्वतम्, इसके नियमित सेवनसे

भाव मिश्र ने ये सब पर्याय नहीं लिखे । वे लिखते हैं—

हरीतक्यभया पथ्या कायस्था पूतनाऽमृता ।
हैमवत्यव्यथा चापि चेतकी श्रेयसी शिवा ॥
वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥

—भाव प्रकाश; हरीतक्यादि वर्ग; श्लोक ६,७ ।

कैयदेव ने इसके अतिरिक्त भी कुछ पर्याय दिये हैं—

हरीतक्यभया पथ्या प्रपथ्या हैमवत्यपि ।
कायस्था श्रेयसी ज्ञेया प्राणदा विजया शिवा ॥
अव्यथा पूतनाऽमोघो प्रमथा पूतना जया ।
जीवनीया वयस्था स्यादमृता चेतकी मता ॥

—कैयदेव निघण्टु; औषधि वर्ग; श्लोक २०६,२०७ ।

धन्वन्तरि निघण्टु ने प्रायः सब वही पर्याय लिखे हैं जो और निघण्टुकारोंने लिखे हैं—

हरीतक्यभया पथ्या प्रपथ्या पूतनाऽमृता ।
जयाऽव्यथा हैमवती वयस्था चेतकी शिवा ।
प्राणदा नन्दिनी चैव रोहिणी विजया च सा ।

—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग ।

रोगका भय कभी नहीं रहता); विजया (विजयते व्याधीन् समग्रान्, सब रोगोंको जीतने वाली); अव्यथा (व्यथा-रोग-दूर करने वाली); प्रमथा (रोगको मथ कर अर्थात् समूल नष्ट कर देने वाली); अमोघा (अव्यर्थ गुणकारक औषधि); कायस्था (शरीर बनाये रखने

यहीं लेखक हरीतकी की व्युत्पत्ति लिखता है—

हरस्य भवने जाता हरिता च स्वभावतः।
सर्वरोगांश्च हरते तेन ख्याता हरीतकी।
—धन्वन्तरि निघण्टु;गुडूच्यादि वर्ग।

राजनिघण्टु हरीतकी की व्युत्पत्ति इससे भिन्न लिखते हैं—

हरते प्रसभं व्याधीन् भूयस्तरति यद्वपुः।
हरीतकी तु सा प्रोक्ता तत्रकीर्दीप्तिवाचकः॥
—राज निघण्टु; आम्रादि वर्ग; श्लोक २२८।

हरीतकी की उत्कृष्टता बताते हुए अष्टाङ्ग संग्रहकार ने हरीतकी के कुछ नामोंका निर्वचन किया है—

हरणात् सर्व रोगाणां यासावुक्ता हरीतकी।
पथ्यत्वात् सर्वधातूनां पथ्या शिवतया शिवा॥
यस्माद्विजयते व्याधीन् समग्रान् विजया ततः।
अभयं सर्वरोगेभ्यो भवत्याशुश्च शाश्वतम्।
अतः शीलयतामेनां तेनेयमभया स्मृता॥
— अष्टाङ्ग संग्रह, उ०, अ० ४९

वाली); वयःस्था (आयु स्थिर करने वाली), पथ्या (पथ्यत्वात् सर्वधातूनाम्, शरीरकी सब धातुओंके लिये पथ्यका काम करती है, उनके लिये हितकर है); प्रपथ्या (बहुत अधिक हितकारक); सुधा, अमृता (अमृत तुल्य, अमरता देने वाली); देवी, दिव्या (दिव्य गुण युक्त); प्राणदा (जीवन देने वाली); जीव्या, जीवन्ती, जीवनीया जीवनिका (जिलाने वाली), पूतना (पवित्र करने वाली), शिवा (कल्याणकारी); श्रेयसी (श्रेष्ठ); चेतकी (चेतना, ज्ञान देने वाली, स्मृति-वर्द्धक); बल्या (बल-दायक); जीव-प्रिया (प्राणियोंकी प्रिय); नन्दिनी (आनन्द देने वाली); भिषक् प्रिया (चिकित्सक की प्रिय, चिकित्सक की भरोसा करने योग्य औषधि); पाचनी (पाचक), रोहिणी (व्रणादियों को रोहण करने वाली)।

बंगाली	—	हरीतकी, हर्तकी।
गुजराती	—	हरड़े, हरड।
मराठी	—	हरीतकी, हर्तकी।
पंजाबी	—	हरं, हरां।
बिहारी	—	हर्रे।
उड़िया	—	करेध।
गढ़वाली	—	हलड्डुंया।
कर्णाटकी	—	अणिलेकामि।

तामिल	—	करक्काय।
नेपाली	—	हेरडो।
बर्मा	—	पन्नगा।
तुर्की	—	अयिलेमर।
अरबी	—	अहर्लीज।
मलाया	—	कडुकामरम्।
अंग्रेज़ी	—	माइरोवेलेन्स (Myrobalans)।
लैटिन	—	टर्मिनेलिया चिबुला, विल्ड (Terminalia chebula, Willd.)।
नैसर्गिक वर्ग		कौम्ब्रिटेसी (Combretacæ)।

प्राप्ति-स्थान

भारत और बर्मा में सर्वत्र विशेष कर सामयिक जंगलों में और कभी कभी अधिक आर्द्र मिश्रित जंगलोंमें भी मिलता है।

उत्तर भारतमें बहुतायतसे होता है। पंजाबमें यह वृक्ष छोटा सामान्यतया ४–५ फ़ीट गहरे तना वाला होता है। अधिक दक्षिणमें और अनुकूल अवस्थाओं में यह अस्सीसे सौ फ़ीट तक बड़ा आकार प्राप्त कर लेता है।

सीधे नियमित आकृति वाले तनेकी गहराई ८ से १२ फ़ीट हो जाती है। उत्तर-पश्चिम प्रान्त में निम्न हिमालय और शिवालिक मार्गोंमें सतलुजसे पूर्वकी ओर पाँच हज़ार फ़ीट तक पहुँच गया है। कांगड़ा ज़िले में विस्तृत रूप में मिलता है। कांगड़ा घाटीमें कमज़ोर चट्टानी ज़मीन पर लगभग ३५०० फ़ीट पर बिखरा हुआ, अकेला या चीड़के साथ मिला हुआ मिलता है। यहाँ वृक्षकी वृद्धि इतनी अच्छी नहीं होती।

मालामऊ, हजारी बाग़, बंगालमें थोड़ा बहुत सब जगह मिल जाता है। आसाममें बहुतायतसे मिलता है। पूर्वीय बगाल, बिहार, अवध, मध्य भारत और दक्षिण भारतमें यह वृक्ष आम है।

यह विभिन्न प्रकारकी ज़मीनोंमें, चिकनी और रेतीली ज़मीनमें भी मिलता है। मध्य प्रान्तमें खुले जंगलों या ग्राम्य भूमियोंमें, चट्टानोंमें आम मिलता है। दूसरे किस्म की ज़मीनोंमें भी होता है।

बम्बईमें उच्च जंगलोंमें आम है। बम्बईमें मुख्यतया थाना, नासिक, नागर. खंडेश, पूना, बेलगाम, सतारा और सूरत जिलोंमें पाया जाता है। महाबलेश्वरके प्लेटिओ के अन्दर ४५०० फीट पर इन जंगलोंका मुख्य अंश है जिनमें छोटी लकड़ी होती है। नर्मदाके दक्षिणमें आम-तौर पर अधिक मिलता है, आकारमें भी बड़ा होता है।

सत्पुड़ाके उच्च स्थलों पर दो हज़ार फ़ीटकी ऊँचाई तक बहुतायतसे मिलता है। गोदावरीके मार्गोंमें उगता है।

हिमालय पर उच्च तल पर चट्टानों वाले और शुष्क स्थानोंमें तथा दक्षिण भारतके पहाड़ोंमें यह बहुत छोटा वृक्ष होता है। परन्तु बड़े वृक्षकी घाटियो और जंगलोंमें यह भी बड़ा हो जाता है और गहरे रंगकी लकड़ी देता है। बाह्य हिमालयमें नीलगिरी और दक्षिण भारतीय पर्वत-श्रेणियोंमें, त्रावनकोर प्रदेशमें, जहाँ कि वर्षा कम होती है, ६००० फीट तक मिल जाता है।

मद्रास प्रेसीडेन्सीमें सर्वत्र जंगलोंमें आम है। प्रायः शुष्क स्थानों पर पाया जाता है। कोयम्बटूरमें बड़े आकार का होता है। गञ्जाम और गुमसूरमें काफ़ी होता है।

बर्मा, लंका और मलाया प्रायद्वीपमें मिलता है। लंकामें नीचे प्रदेशमें शुष्क ज़िलोंमें होता है। सिंगापुरकी जलवायुके लिये यह अनुकूल नहीं है। वहाँके वानस्पतिक उद्यान (बौटेनिकल गार्डन) में इसको उगानेका प्रयत्न किया गया पर सफलता नहीं मिली। जावामें उगाया जा सकता है। बुटनूज़र्ग (Butenzorg) में किसी तरह हो सकता है और मलाया प्रायद्वीपमें कुछ भाग ऐसे हैं जो निस्सन्देह इसके लिये अनुपयुक्त नहीं हैं।

वर्णन

एक मध्यमाकार या बड़ा सामयिक (Deciduous)

वृक्ष है। ऊपरका भाग गोल मुकुटकी तरह होता है। शाखाएँ बहुत और प्रत्येक दिशामें फैलती हुई और इनके प्रान्तीय भाग प्रायः नीचेकी ओर गिरते हुए, तना वृक्ष के आकारसे प्राय:कर छोटा और सीधा कम ही होता है। ज़मीनसे तीन फ़ीट ऊँचे तनेकी परिधि दो से तीन फ़ीट होती है। वर्मामें तना प्रायः ऊँचा और सीधा चला जाता है।

पत्र कलिकाएँ, छोटी शाखाएँ और नये पत्ते, लम्बे मुलायम चमकीले, सामान्यतया जंगारके रंगके और कभी कभी चाँदीके रंगके बालोंसे ढके हुए होते हैं। पत्ते एक दूसरेसे समान दूरी पर, प्राय:कर अर्द्ध-सन्मुख (Sub-opposite), अण्डाकृति या समाकार-व्यस्त-अट्वाकार (Oblong-ovate , दीर्घतीक्ष्ण (Accuminate), तीनसे आठ इञ्च लम्बे, तीन इञ्च चौड़े, तूल रोमशसे सर्वथा घने बालो वाले या सर्वथा स्निग्ध आदि सब अवस्थाओंमें होते हैं। पत्तेकी मुख्य बाह्य नाड़ियाँ स्पष्ट और मध्य पसलीके दोनों ओर छः से बारह होती है। पत्तेके निचले पृष्ठ पर नाडियाँ बहुत स्पष्ट और उभरी हुई होती हैं। पत्र वृन्त पर सिरेके समीप एक या दो ग्रन्थियाँ या उभार होते हैं। पत्तेकी $\frac{1}{3}$ लम्बाईसे पत्र वृन्त छोटा होता है।

कुछ स्थानोंमें नवम्बरसे पत्ते गिरने आरम्भ होते हैं और फ़र्वरी-मार्च तक वृक्ष पत्र विहीन हो जाते हैं। फिर नये पत्ते मार्चसे मईमें निकलते हैं। ये हलके हरे या कभी-कभी ताम्र वर्ण होते हैं।

एक प्रकारका कीड़ा बैगवर्ममौथ (Bagworm moth, इसका वैज्ञानिक भाषामें नाम है—Acanthosyche moorei = एकेन्थोसिशी मूरी) वृक्षके पत्तोंको बहुत नुक्सान पहुँचाता है।

छाल एक-चौथाई इञ्च मोटी, गहरी भूरी-भूसर, सामान्यतया बहुत सी उथली लम्ब अक्ष दरारोंसे युक्त और लकड़ीके बाह्य छिलकेके साथ उतरती हुई होती है।

लकड़ी बहुत कठोर और भूसर वर्ण जिसमें हरी या पीली सी आभा होती है। अन्तः काष्ठ (Heart wood) अनियमित, छोटी, गहरी जामनी, सख़्त, भारी और अच्छी टिकाऊ होती है। वार्षिक चक्र (Annual rings) अस्पष्ट होते हैं। छिद्र छोटे और प्रायःकर अर्द्ध-विभक्त, एकाकी या समूहोंमें होते हैं। लकड़ीका भार तरेपनसे छियासठ पौण्ड प्रति घन फ़ुट होता है। बहेड़ेकी लकड़ीसे भारी होती है।

पौदेकी वृद्धि सामान्य होती है। प्रति इञ्च व्यासार्द्धमें छहसे दस चक्र होते हैं। प्राकृतिक उत्पत्तिमें वृक्ष

अधिकतम छाया-तापमान ९८ से १६०° फ़ार्नेहाइट और न्यूनतम ३०° से ६०° फ़ार्नेहाइट होता है। वहाँकी सामान्य वर्षा ३० से १२० इंच होती है।

हलकेसे सफ़ेद रंगके पुष्पस्तवक नये पत्तोंके साथ प्रकट होते हैं। हिमालयकी घाटियोंमें देरमें, जून-अगस्तमें फूल निकलते हैं। मध्य प्रान्तमें सामान्यतया अप्रैल-मईमें फूलनेके अतिरिक्त जुलाई-अगस्त तक भी थोड़े-थोड़े फूल निकलते रहते हैं। हरिद्वारमें सेप्टेम्बरके अन्तिम सप्ताहमें भी कुछ फूल वृक्ष पर देखे जा सकते हैं।

पुष्पस्तवक दो से चार इंच लम्बा, प्रायःकर संयुक्त विवृन्तक, और चालू साल के शाखोद्भेदोंके सिरे पर, प्रान्तीय और ऊर्ध्वतम पत्तोंके अक्षोंमें होता है। पुष्प उभय लिङ्गी, व्यास¼ इंच, अवृन्तक, वर्ण मैला सा सफ़ेद या पीला और गन्ध भद्दी सी होती है। फूल प्रायःकर एक कीड़ेसे आक्रान्त हो जाते हैं।

बाहरकी ओर फैलती हुई शाखाओंके सिरों पर गुच्छों में फल लटकते हैं। फल एकाकी या तीनसे दस तक इकट्ठे एक गुच्छेमें लटके होते हैं। वृक्षके अन्दरके भागमें फल कम ही दिखाई देते हैं।

स्थानिक भेदसे फल नवम्बरसे मार्च तक पकते हैं और पकनेके बाद शीघ्र गिर जाते हैं। फलकी आकृति और आकार बहुत भिन्न भिन्न होता है। यह प्रायःकर पाँच

लम्ब अक्षमें (Longitudinally) रेखाओं वाला, कठोर, एकसे दो इंच लम्बा, रंगमें पीला-बादामी या नारंगी-भूरा, कभी कभी लाल या काली आभा लिये हुए होता है। इसमें सूखा और कठोर गूदा होता है जिसकी मोटाई भिन्न भिन्न होती है। अन्दर पत्थर जैसी कठोर गुठली होती है, यह सारे भारका तेईससे बावन प्रतिशतक होती है। गुठली ०.६-०.८ इंच चौडी, ०.५-०.६ इंच लम्बी, अण्डाकार, पीतवर्ण, ऊँची नीची, गढ्ढोंसे युक्त, कठोर और अर्द्ध-कोणायित होती है। हर लाल फलोंकी फ़सल भिन्न भिन्न होती है। लगभग पैंतीससे पैंतालिस ताज़े फलों या साठसे पिचहत्तर सूखी हरडोंका भार एक पौण्ड होता है।

एक प्रकारका कीडा कोमल पत्तोंमें छेद करके अपने अण्डे दे देता है। पत्ता कट जानेसे रसका स्वाभाविक प्रवाह इस कटे हुए स्थान पर अधिक होता है और यह स्थान आकारमें बड़ा हो कर एक उभार या फल का सा रूप धारण कर लेता है। यह फल क्योंकि एक कीड़ेके कार्य द्वारा बना है इसलिये इसे कीट-फल (Gall) कहते हैं। प्राचीन संस्कृत लेखक, यद्यपि, कीड़ोंकी इस प्रकारकी रचना—अवास्तविक फल—से अवश्य परिचित थे जिसके लिये उदाहरणके तौर पर हम माजूफल, कर्कट शृंगी आदिका नाम ले सकते हैं, तथापि

हरड़के कीट-फलों (Galls) की ओर उनका ध्यान नहीं गया था। प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें इनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

भेद

छिलकेकी स्वल्पता, गूदेकी स्थूलता, आकार गोल या लम्बा तथा वर्ण आदिके अनुसार संस्कृत लेखकों ने हरड़के सात भेद किये हैं। यहाँ हम उनका नाम, परिचय और उत्पत्ति-स्थान संस्कृत लेखकोंके अनुसार लिख रहे हैं*।

(१) विजया—विन्ध्य पर्वत पर उगने वाली हरड़को विजया नाम दिया गया है। यह घीये जैसी लम्बी, गोल,

---

*राज निघण्टुके शब्दोंमें सात भेदोंका वर्णन इस प्रकार है—

नाम—

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया।
जीवन्ती चेतकी चेति नाम्ना सप्तविधा मता॥

परिचय—

अलाबुनाभिर्विजया सुवृत्ता रोहिणी मता।
स्वल्पत्वक् पूतना ज्ञेया स्थूलमांसाऽमृता स्मृता॥
पञ्चास्रा चाभया ज्ञेया जीवन्ती स्वर्णवर्णभाक्।
त्र्यस्रा तु चेतकी विद्यात् इत्यासां रूपलक्षणम्॥

ऊपरसे पतली और नीचेकी ओर क्रमशः मोटी होती गई होती है। सामान्यतया इसका प्रयोग सब जगह होता है। हरड़ की सातों जातियोंमें से यह प्रधान है, क्योंकि यह सुगमता से मिल जाती है, इसका प्रयोग करना सरल है और यह सब रोगोंमें दी जा सकती है।

प्राप्ति-स्थान—

विन्ध्याद्रौ विजया हिमाचलभवा स्याच्चेतकी पूतना।
सिन्धौ स्यादथ रोहिणी तु विजया जाता प्रतिस्थानके।
चम्पायाममृताऽभया च जनिता देशे सुराष्ट्राह्वये
जीवन्ती च हरीतकी निगदिताः सप्तप्रभेदा बुधैः॥

उपयोग—

सर्वप्रयोगे विजया च रोहिणी
घातेषु लेपेषु च पूतनोदिता।
विरेचनेस्यादमृता गुणाधिका
जीवन्तिका स्यादिह जीर्णरोगजित्॥
स्याच्चेतकी सर्वगदापहारिका
नेत्रापयघ्नीमभयां वदन्ति।
इत्थं यथायोगमियं प्रयोजिता
ज्ञेया गुणाढ्या न कदाचिदन्यथा॥
चेतकी च धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः।
तावद्विरेच्यते वेगात् तत्प्रभावान्न संशयः॥
सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता।

(२) रोहिणी—फूली हुई सी अच्छी गोल हरड़ोंके वृक्ष सिन्ध प्रदेशमें मिलते हैं। व्रणों पर लेपके रूपमें इसका प्रयोग प्रशस्त है।

(३) पूतना—पतले छिलके वाली हरड़ें सिन्धमें मिलती हैं। विरेचनके लिए ये अच्छी हैं।

सुखप्रयोग सुलभा सर्वव्याधिषु शस्यते ॥
— राजनिघण्टु; आम्रादिवर्ग; श्लोक २१६ से २२६ तक।

भाव मिश्र ने इन क़िस्मोंका इस प्रकार वर्णन किया है :—

नाम—

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताभया।
जीवन्ती चेतकी चेति पथ्यायाः सप्त जातयः ॥

परिचय—

अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता।
पूतनाऽस्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता ॥
पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी।
त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥

उपयोग—

विजया सर्वरोगेषु रोहिणी व्रणरोहिणी।
प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥

(४) अमृता—चम्पामें उत्पन्न होने वाली मोटे गूदेकी हरड़ है। इसमें चिकित्सा सम्बन्धी गुण अपेक्षाकृत अधिक है।

अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोगहृत्।
चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथायुक्तं प्रयोजयेत्॥

चेतकीके दो भेद—

चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः॥
षडङ्गुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता॥
काचिदास्वादमात्रेण काचिद्गन्धेन भेदयेत्।
काचित्स्पर्शेन दृष्ट्याऽन्या चतुर्धाभेदयेच्छिवा॥

चेतकी के गुण—

चेतकी पादपच्छायामुपसर्पन्ति ये नराः।
भिद्यन्ते तत्क्षणादेव पशुपक्षिमृगादयः॥
चेतकी तु धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः।
तावद्भिद्यते वेगैस्तु प्रभावान्नात्र संशयः॥
नृपाणां सुकुमाराणां कृशानां भेषजद्विषाम्।
चेतकी परमा शस्ता हिता सुखविरेचनी॥
सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता।
सुख प्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते॥

—भाव-प्रकाश; पूर्वखण्ड; हरीतक्यादिवर्ग; श्लोक ८ से १८ तक

(५) अभया—सुराष्ट्र नामक देशमें उत्पन्न होती है। इसके ऊपर पाँच रेखायें होती हैं। यह नेत्र रोगोंको नष्ट करती है।

(६) जीवन्ती—सोनेके रंग वाली यह हरड़ पुराने रोगोंमें अच्छी है।

(७) चेतकी—हिमालय पर्वत पर होने वाली तीन रेखाओं वाली हरड़ है। सब रोगोंको नष्ट करती है। इस का विरेचन प्रभाव इतना तीव्र कहा गया है कि जब तक हाथमें रहेगी तब तक विरेचन होते रहते हैं।

आयुर्वेदके आदि लेखक महर्षि चरकके समय हरड़के ये भेद ज्ञात नहीं थे। चरक-संहितामें चिकित्सा स्थानके प्रथम अध्यायमें रसायन प्रकरणमें हरड़के गुण आदिका विस्तृत उल्लेख है, परन्तु इसके भेदोंकी ओर ज़रा भी संकेत नहीं किया गया। यही बात हम सुश्रुत और वाग्भट्टमें देखते हैं। अपेक्षाकृत कुछ पीछे लिखे गये निघण्टु ग्रन्थोंमें ही हम इन भेदोंका वर्णन पाते हैं।

आधुनिक वानस्पतिक विद्वानोंके मतमें भारतीयोंके ये सात भेद फलकी परिपक्वताकी विभिन्न अवस्थायें ही हैं। हम इस विचारसे आंशिक रूपमें भले ही सहमत हों, परन्तु हमारी धारणा यह है कि स्थान भेदसे फलोंकी आकृति आदिमें जो कुछ फ़र्क पड़ जाता है उसके अनुसार ही निघण्टुकारों ने इन सात भेदोंकी सृष्टि की है। चाहे

चित्र २—हरड़ (विलया)

जो विचार ठीक हो, यह सत्य है कि निघण्टुकारोंके ये सात भेद वर्तमान संसारको अज्ञात हैं।

प्रारम्भिक अरेबियन लेखक हरड़को जानते थे। उन से ग्रीकोंको हरड़का ज्ञान हुआ। एक्चुएरिअस (Actuarious) ग्रीक लेखक हरड़के पाँच प्रकारोंका वर्णन करता है। मख़्ज़न-उल-अद्वियाका रचयिता निम्न क़िस्मों का ज़िक्र करता है जो फलकी परिपक्वताकी विभिन्न अवस्थाओंकी ओर संकेत करती हैं—

१-हलिलेह-ए-जीरा—फल जब प्रारम्भमें आते ही हैं तो उन्हें इकट्ठा करके सुखा लेते हैं। इसका आकार लगभग जीरेके बराबर होता है।

२-हलिलेह-ए-जवि—कुछ अधिक बड़ा फल, लगभग जौके आकारका।

३-हलिलेह-ए-जंगी—यह फलकी और अधिक उन्नत अवस्था है। सूखने पर यह आकारमें द्राक्षाके समान और रंगमें काला होता है। इसके दो नाम और हैं—हलिलेह-ए-हिन्दी और हलिलेह-ए-अस्वेद। जंगी और अस्वेदका अर्थ होता है काला।

४-हलिलेह-ए-चीनी—फल जब कुछ कठोर हो जाता है और रंगमें हरा सा पीला होता है तब इकट्ठा किया जाता है।

५-हलिलेह्-ए-अस्फ़ार—लगभग पका हुआ फल, पर फिर भी इस समय यह अत्यन्त ग्राही होता है।

६-हलिलेह्-ए-काबुली—पूर्ण पक्व फल।

इन छः क़िस्मोंमें से दूसरी, तीसरी और छठी किस्म ही चिकित्सा प्रयोजनमें ज़्यादह काम आती है और, चौथी तथा पाँचवी क़िस्मोंको मुख्यतया चर्मकार इस्तेमाल करते हैं।

अपने जीवनके विभिन्न कालोंमें फलमें टैनिक पदार्थ के परिमाणकी विभिन्नताके सम्बन्धमें आगे जो टिप्पणी दी गई है उसको ध्यानमें रखते हुए यह तथ्य बहुत दिलचस्प है, और संकेत देता है कि पर्शियन और सम्भवतः अरब भी अपक्व फलको चर्म-कर्मके लिए एक अच्छी क़िस्म समझते थे।

आजकल व्यवहारमें अधिक प्रचलित हरड नम्बर तीन या जंगी हरड़ मालूम होती है। और कुछ विद्वानोंका ख़्याल है कि हिन्दुओंके चिकित्सा-शास्त्रकी विजया हरड़ सम्भवतः यही है।

कृषि

बीजकी जनन-शक्ति निर्बल है। इसका स्पष्ट कारण निश्चित रूपसे नहीं जाना जा सका। जिन फलोंमें ऊपर की रेखाएँ स्पष्ट होती हैं उनमें अंकुरोत्पत्ति कम होती है।

कई फलोंका ऊपरके कठोर गूदेका भाग काले चूर्णके रूपमें बदल जाता है । सम्भवतः फ़ंगाईके कारण वे जल्दी उग आते हैं । धूपकी अपेक्षा छायामें बोनेसे अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं । बीज अपनी जनन-शक्ति कुछ हद तक एक साल तक कायम रखते है ।

छोटे-छोटे ज़मीनके टुकड़ोंमें, खाइयोंमें या दूसरी तरह से कई सालों तक मनो बीज बोये गये, परन्तु सफलता जनक परिणाम नहीं प्राप्त हुए । बीजोंकी निर्बल जनन-शक्ति तथा कीड़ो, गिलहरियों और चूहोंसे खाये जाने की सम्भावना आदि कारणोंसे सन्तोष-जनक परिणाम नही प्राप्त हुए ।

नर्सरीमें बीजोंसे पौदे लगानेका सबसे अच्छा तरीका यह समझा गया है कि फलोंको पूर्णतया सुखा कर, ऊपर के सख्त गूदेके आवरणको उतार कर वर्षा-ऋतुसे पहले गुठलियोंको बौक्सोंमें बो दिया जाय । तब उन्हें मिट्टीसे ढक कर नियमित पानी दिया जाय । इस तरीकेसे भी केवल बीस प्रतिशतक सफलता प्राप्त हुई है । गीले खादमें कुछ दिन तक फलोंको दबा कर रखनेसे अङ्कुरोत्पत्तिमें कुछ प्रभाव होता हुआ नहीं दिखाई दिया । बोनेके लिए फलोंको वृक्षसे गिरनेके साथ ही इकट्ठा कर लेना चाहिये । वृक्षपर से फल तोड़े नहीं जाने चाहिएं ।

प्राकृतिक अवस्थाओंमें गिरे हुए फलोंके कुछ भाग पर बारिशसे मिट्टी आ जाती है और ये ज़मीनमें गड़े हुए होते हैं। इनमें विद्यमान टैनिनके कारण इनके चारो ओर की ज़मीन काली हो जाती है। गूदे वाला भाग अंशतः दीमकोंसे खाया जाता है या भुरभुरा जाता है और सख्त गुठली अनावृत हो जाती है। अङ्कुरोत्पत्ति वर्षा ऋतुमें होती है। कभी इस ऋतुके अन्त तक नहीं होती और कुछ अवस्थाओंमें आगामी साल तक भी नहीं होती। खुले फलोंकी अपेक्षा मिट्टीमें ढके हुए फल अधिक उगते हैं।

नवजात पौदोंकी वृद्धि अपेक्षाकृत मन्द होती है। पहली मौसमके अन्त तक सामान्यतया लगभग चारसे आठ इंच तक ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं। दूसरी मौसमकी समाप्ति तक एक–दो फ़ीट बढ जाते हैं। वार्षिक वृद्धि लगभग नवम्बरमें रुक जाती है। पत्ते इस माससे गिरना आरम्भ करते हैं और पौदे जनवरी-फ़रवरीमें पत्रविहीन हो जाते हैं। नई वृद्धि लगभग मार्चमें आरम्भ होती है। छोटे पौदे पालेको अच्छा बर्दाश्त करते हैं। नर्सरीसे पौदोंको प्रथम वर्षाऋतुमें उठाया जा सकता है।

वृक्षकी बहुत ज़्यादह माँग नहीं है। यद्यपि जवानीमें और बड़ी आयुमें भी यह थोड़ी छाया देता है और धूपसे रक्षामें सहायक होता है। पाले और तेज़ हवाका इस पर बहुत प्रभाव नहीं होता। आगका यह अच्छा मुकाबला

करता है और जल जानेके बाद आरोग्य लाभ करनेकी इसमें अच्छी शक्ति है। इसमेंसे ख़ूब शाखाएँ निकल आती हैं। पाँच सालमें इन नवीन शाखाओंकी औसत ऊँचाई आठ फ़ीट पहुंच जाती है।

उपयोगी भाग

फल और गुठली।

ऋतुमें स्वयं पक कर ज़मीन पर गिरी हुई, ताज़ी, ऊपरसे चिकनी, गोल, भारी और पानीमें डूब जाने वाली हरड अच्छी समझी जाती है*। पानीमें डूब जानेका गुण जिसमें जितना अधिक होता है वह उतनी ही श्रेष्ठ समझी जाती है † इन गुणोंके साथ साथ हरड़का भार चार तोला हो तो यह बहुत उत्तम होती है‡।

---

* कालयोगात्स्वयं पक्का पतिता तु महीतले।
नवा स्निग्धा तथा वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता तथाऽम्भसि॥
निमज्जेद्या तथैकस्मिन् फले चैव द्विकर्षता।
सर्वदा गुणकृत्सा तु ततोऽन्या नु विवर्जिता॥
कैयदेवनिघण्टु; औषधि-वर्ग; श्लोक २१६, २१७।

† क्षिप्ताऽप्सु निमज्जति या सा ज्ञेया गुणवती भिषग्व र्यैः।
यस्या यस्या भूयो निमज्जनं सा गुणाढ्या स्यात्॥
—राज निघण्टु, आम्रादि वर्ग, श्लोक २२७।

‡ नवादिगुणयुक्तत्वं तथैकत्वं द्विकर्षता।

हरड़ कठोर और दृढ़ होनी चाहिए। इकट्ठा करके हिलानेसे पक्क मृत्तिका-पात्रके टुकड़ोंके समान बजनी चाहिये। हथौड़ेसे कुचलने पर शुष्क पीला चूर्ण देती है, जिसमें कठोर अनियमित टुकड़े भी होते हैं। पिसी हुई हरडका चूर्ण पीला बादामी सा, शुष्क, स्वादमें ग्राही, परन्तु अत्यधिक कडवा या नमकीन स्वाद भी नहीं होना चाहिये। गीला करके हाथमें मसला जाय तो आपस में मिलकर एक समूहमें बन जाता है, भुरभुराता नहीं।

अच्छे फल भारी और भरे हुए होते हैं, काले रंगके धब्बों या उभारों और कीट छिद्रोंसे रहित होने चाहिये। अंगुलियोंके बीचमें पीसनेसे या खरलमें रगडनेसे यदि यह मैले रंगके चूर्णमें भुरभुरा जाय तो हरड़ घटिया क़िस्मकी समझनी चाहिए।

हरीतक्याः फले यत्र तत्सर्वं गुणकृद्भवेत् ॥

—कैयदेव निघण्टु, औषधिवर्ग, श्लोक २१८।

भाव मिश्र उत्तम हरड़की पहिचान लिखता है—

नवा स्निग्धा घना वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च वाम्भसि।

निमज्जेत् सा प्रशस्ता च कथितातिगुणप्रदा॥

नवादि गुण युक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता।

हरीतक्या फले यत्र द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते॥

—भावप्रकाश; पूर्वखण्ड; हरीतक्यादि वर्ग; श्लोक २८, २९।

कीड़ोंसे खाई हुई, आगसे जली हुई पानी पर तैरने वाली, ऊसर भूमिमें उगी हुई और टूटी फूटी हरड़को चिकित्सा कर्ममें न लें* ।

संग्रह

व्यापारिक प्रयोजनके लिए पूर्ण पकने पर फल इकट्ठे किये जाते हैं और धूपमें फैला दिये जाते हैं जिससे पूर्णतया सूख जायँ । कई स्थानोपर सर्वथा पीले तथा पूर्ण पक्क होनेसे पूर्व ही ज़रा सी पीलिमा आने पर फल इकट्ठे कर लिये जाते हैं । धूपमें सुखा कर ये बाज़ारकी हरड़ें बन जाती हैं । सूखते समय ये बारिशसे गीली नहीं होनी चाहियें । सूखते हुए ये बहुत सिकुड़ जाती हैं और झुर्रीदार हो जाते हैं ।

मिलावट

पूरे फल जब मार्केटमें आते हैं तो उनमें प्रायःकर मिट्टी, रेता, अभ्रक, कुचला, सुपारी, असन (Terminalia tomentosa) आदि मिले रहते हैं। पिसी हरड़ोंमें कभी कभी दिवी दिवी (Cæsalpinia cor-

---

* जन्तुजग्धां दवादग्धां जल पङ्के स्थिता पुनः ।
ऊषरे वा स्थितां भिन्नां वर्जयेत्तु हरीतकीम् ॥
—कैयदेव निघण्टु; औषधि वर्ग; श्लोक २१६ ।

iaria = सिसैल्पीनिया कौरिएरिया), रही सुमाक (Rhus cotinus = र्हस कौटिनस) और जंगली कीट-फल (Galls) मिला दिये जाते हैं। इन मिलावटोंको देखनेके लिये थोड़ा सा चूर्ण एक सफ़ेद कागज़ पर विरल बिखेर दें और ताल (लेन्स) से परीक्षा करें। यदि दिवी दिवी मिलाई गई है तो इसके चमकीले भूरे चपटे बीजोंके खण्ड अवश्य मिलेंगे। हरडका बाहरका छिलका कभी कभी रंगमें दिवी दिवी बीजसे मिलता जुलता हो सकता है, परन्तु हरडके सूक्ष्मतम अंशका पृष्ठ झुर्रीदार दिखाई देगा, जब कि दिवीदिवी बीज चिकने होंगे।

रासायनिक विश्लेषण

हर्र फ़िडोलिन (१८८४) ने फलसे एक नया ऐन्द्रिक अम्ल पृथक् किया जिसे वह चिबुलिनिक अम्ल कहता है। यह सम्भवतः गैलो टैनिक एसिडका स्रोत है।

एम० पी० एपेरी (१८८८) के अनुसार काली हरड में एक हरे रंगका तैलीय रेज़िन होता है जो एल्कोहल, ईथर, पेट्रोलियम, स्पिरिट और टर्पेण्टाइनके तेलमें घुलन-शील है। वह इसे माइरोबैलेनीन नाम देता है।

हरडमें विद्यमान टैनिन्समें लगभग सम्पूर्ण पाइरोगैलोल टैनिन्स होते हैं। गैलोटैनिक एसिड भी होता है। भारतीय फलोंमें शुष्क फलके भारका अट्ठाईससे छियालीस

प्रतिशतक टैनिन होता है। बौम्बे प्रेसीडेन्सीमें औक्टूबरमें इकट्ठे किये गये फलोंकी अपेक्षा मार्चमें इकट्ठे किये हुओं में टैनिनका परिमाण अधिक था। बर्मामें उगे हुए वृक्ष के प्रत्येक भागमें पिल्ग्रिम (१९२३) ने अच्छे परिमाणमें टैनिन पाया। शुष्क पत्तोंमें चारसे सत्ताईस प्रतिशतक, शाखाओंकी छालमें लगभग छब्बीस प्रतिशतक, अन्तस्त्वक् में बाईस प्रतिशतक, तनेकी बाह्य छालमें लगभग बारह प्रतिशतक और लकड़ीमें सात प्रतिशतक टैनिन था। हूपरने भारतीय छालमें तेतीस और चौंतीस प्रतिशतक प्राप्त किया।

हरडके अनेक नमूनोंके किये गये विश्लेषणसे मालूम होता है कि एक ही वृक्ष परसे फलोंकी वृद्धिकी विभिन्न अवस्थाओंमें लिये गये हरड़ोंमें गैलो-टैनिक एसिड छःसे तीस प्रतिशतक तक विभिन्न संघटनोंमें होता है। लम्बोतरी, नोकीली, ठोस और पीली हरी हरड़ोंके नमूने परीक्षामें गोल, स्पञ्जी हरडोंके नमूनोंकी अपेक्षा इतने अधिक बढ़िया पाये गये कि उन्हें एक भिन्न जातिके वृक्षकी उपज समझनेकी भूल हो सकती है। व्यापारमें फलोंकी जाँचका एक सामान्य तरीका यह होता है कि फल झुर्रीदार हैं या चपटे पृष्ठके। यह परीक्षा ठीक नहीं मालूम होती। व्यापारिक हरडोंके नमूनेमें औसत टैनिक एसिड इकत्तीस प्रतिशतक होता है। बाज़ारमें मिलने वाले फलोंमें तीनसे सात तक विभिन्न प्रतिशतकतामें आर्द्रता होती है और

ज्वलन पर बची हुई राखका परिमाण दस प्रतिशतक होता है। टैनिक एसिड मुख्यतया गूदेमें होता है। फलोंमें एक हरित-वर्ण तैलीय-रेज़िन (Oleo-resin) होता है जिसका नाम माइरोबैलेनीन है। कीट-फल (Gall) में टैनिक एसिड १३.१ प्रतिशतक होता है।

चित्रुलिक एसिड—फलोंसे यह निम्न विधिसे प्राप्त किया जाता है। सूखे फल चूर्ण किये जाते हैं। साधारण तापमान पर ८०३ प्रतिशतक एल्कोहलमें दस दिन तक भिगोये जानेके बाद निचोड़ कर द्रवको छारण पत्र (Filter paper) में छान लिया जाता है। इससे एल्कोहल पूर्णतया अलग कर लें और अवशेषको तब गरम जलमें घोलें। इसमें ठण्डा पानी तब तक मिलायें जब तक दूधिया रंग बन्द न हो जाय। इस सबको बैठनेके बाद छान लें। छारण से प्राप्त द्रव्यमें सोडियम हरिद इतना मिलाएँ कि स्थिर गदलापन आ जाय और तब घोल को इथाईल एसिटेट (Ethyl acetate) के साथ मिलाकर हिलाएँ जो चित्रुलिक और टैनिक एसिडको हल कर लेता है। टैनिक एसिडको अलग करनेके लिये इथाईल एसिटेटको पातित (Distil) कर लें, और अवशेषको पानीमें घोल लें। और ईथरके साथ हिलाएँ। रखा रहनेसे जलीय घोलसे चित्रुलिक एसिडके स्फटिक पृथक् हो जाते हैं और गरम जलसे पुनः स्फटिकीकरण

किया जा सकता है। चिन्नुलिक एसिड ३'५ प्रतिशतक निकलता है। गरम करनेसे यह लगभग २००°से पिघलने लगता है। औप्टिकलि एक्टिव (optically active) है।

गुठलीके अन्दरके गूदेमें एक स्वच्छ पारदर्शक, लगभग रंगरहित या पीताभ द्रव तेल ३६.७ प्रतिशतक निकलता है, यह स्वादु और भक्ष्य तेल चिकित्सामें काम आता है। तेलके एक नमूनेकी परीक्षा की गई जिसका अम्लीय मान (Acid value) ८'१ था, साबुनीकरण मान (Saponification value) १९२.६ और आयोडीन मान (Iodine value) ८७.५ था। अविलेय स्निग्ध अम्ल (Fatty acid) और साबुन न बनने वाला पदार्थ (Unsaponifiable matter) ९६.२ प्रतिशतक थे। गुठलीमें टैनिन नहीं होता।

गुण

संस्कृत लेखकों ने हरडमें पाँच रस माने हैं। छः रसोंमें से लवण रस इसमें नहीं होता।

> कषायाम्ला च कटुका तिक्ता मधुररसान्विता।
> इति पञ्चरसा पथ्या लवणेन विवर्जिता॥
>
> —धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग

फलके किस भागमें कौन रस प्रधान होता है इसके सम्बन्धमें विभिन्न लेखकोंके मत हैं—

पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नायावम्लो व्यवस्थितः ।
वृन्ते तिक्तस्त्वचिकटुर स्थिन तु तुवरो रसः ॥
—भावप्रकाश, पूर्णखण्ड, हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक २७ ।
मज्जत्वक् स्नायुमांसास्थिस्थिताः पंचाभयोद्भवाः ।
स्वादु कषायकट्वम्लतिक्ताख्याः क्रमशो रसाः ॥
—कैयदेव निघण्टु, औषधि-वर्ग, श्लोक २१४ ।
बीजास्थि तिक्ता मधुरा तदन्तस्त्वग्भागतः सा कटुरुष्णवीर्या ।
मांसांशतश्चाम्लकषाययुक्ता हरीतकी पञ्चरसास्मृतेयम् ॥
—राज निघण्टु; आम्रादि एकादश वर्ग,

हरीतकीके त्रिदोषहर होनेमें हेतु—
अम्लभावाज्जयेद्वातं पित्तं मधुरतिक्तकात् ।
कफं रूक्षकषयात्वात् त्रिदोषघ्नी ततोऽभया ॥
—धन्वन्तरि निघण्टु, गुडूच्यादि वर्ग ।
स्वाद्वम्लभावात्पवनं कटुतिक्ततया कफम् ।
कषायमधुरत्वाच्च पित्तं हन्ति हरीतकी ॥
—कैयदेव निघण्टु, औषधिवर्ग, श्लोक २१३ ।
कैयदेव हरड़के गुण लिखते हैं—
जया विलवणा पञ्चरसातु तुवरोत्कटा ।
स्वादु पाकरसायुष्या रूक्षोष्णा वृंहणी लघुः ॥
दीपनी पाचनी मेध्या वयसः स्थापनी परम् ।
रसायनी च चक्षुष्या बलबुद्धि स्मृतिप्रदा ॥
कुष्ठवैवर्ण्यवैस्वर्यपुराणविषमज्वरान् ।

शिरोऽक्षिपाण्डुहृद्रोगकामलाग्रहणी गदान् ॥
सशोषशोफातिसारमेहमोहवमिक्रमीन् ।
श्वासकासप्रसेकार्शः प्लीहानाहगरोदरान् ॥
विबन्धं स्रोतसां गुल्ममूरुस्तम्भमरोचकम् ।
हिध्माध्मानव्रणान् शूलं त्रीन् दोषांश्च व्यपोहति ॥
पथ्यामज्जा च चक्षुष्योवातपित्तहरो गुरुः ।
नीरजा वनजा चैव पार्वतीयइति त्रिधा ।
यथोत्तरं पथ्यतमा विज्ञेया त्रिविधाभया ॥

—कैयदेव निघण्टु, औषधिवर्ग, श्लोक २०८ से २१५ तक ।

हरीतकी पञ्चरसा च रेचनी कोष्ठामयघ्नी लवणेन वर्जिता ॥
रसायनी नेत्ररूजापहारिणी त्वगामयघ्नी किल योगवाहिनी ॥

—राज निघण्टु, आम्रादि वर्ग, श्लोक २१६

प्रपथ्या लेखनी लघ्वी मेध्या चक्षुर्हिता सदा ।
मेहकुष्ठव्रणच्छर्दिशोफवातास्रकृच्छ्रजित् ॥
वातानुलोमिनी हृद्या सेन्द्रियाणां प्रसादनी ।
संतर्पणकृतान् रोगान् प्रायो हन्ति हरीतकी ॥

—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग ।

हरीतकी पञ्चरसाऽलवणा तुवरा परम् ।
रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी ॥
चक्षुष्या लघ्वारायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी ।
श्वासकासप्रमेहार्शः कुष्ठशोथोदरक्रिमीन् ॥

वैस्वर्यंग्रहणीरोगविबन्धविषमज्वरान् ।
गुल्माध्मानतृषाछर्दिहिक्काकण्डूहृदामयान् ॥
कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातञ्च नाशयेत् ।
स्वादुतिक्तकषायत्वात्पित्तहृत्कफहृत्तु सा ।
कटुतिक्तकषायत्वादम्लत्वाद्वातहृच्छिवा ॥
पित्तकृत्कटुकाम्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा ।
प्रभावाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत्प्रकाश्यते ।
हेतुभिः शिष्यबोधार्थं पूर्वं तुक्रियतेऽधुना ॥
कर्मान्यत्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदतः ।
यतस्ततो नेति चिन्त्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥

—भाव प्रकाश, पूर्वखण्ड, वर्ग प्रकरण ६, हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक १९ से २६ तक ।

विभिन्न प्रकारसे प्रयोग करने पर हरड़के गुणोंमें भेद होता है—

चर्विता वर्द्धयत्यग्निं पेषिता मलशोधिनी ।
स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ॥
उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां निर्मूलिनीपित्तकफानिलानाम् ।
विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी स्यात् सह भोजनेन ॥
अन्नपानकृतान्दोषान्वातपित्तकफोद्भवान् ।
हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरियोजिता ॥

लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा ।
घृतेन वातजान् रोगान्सर्वान्रोगान्गुणान्विता ॥
—भावप्रकाश पूर्व खण्ड, वर्गप्रकरण ६, हरीतक्यादि- वर्ग, श्लोक ३० से ३३ तक ।

योग

अभया वटी*—हरड़, काली मिर्च, पिप्पली और सुहागा प्रत्येक समान भाग लेकर सबके बराबर शुद्ध जय-पाल मिलाएँ । सेहुण्डके दूधसे मर्दनकर चौथाई रत्तीकी गोलियाँ बनायें ।

मात्रा—दो गोली । एक हरड़को तण्डुलोदकमें पीस कर उसके साथ दो गोली खाय । रोगी जब तक गरम

---

*अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणश्च समांशिकम् ।
सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात्कानकजं फलम् ।
स्नुही क्षीरेण संकुर्याद् गुञ्जापादमितां वटीम् ।
वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ॥
उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च ।
जीर्णज्वरं प्लीहरोगं हन्त्यष्टावुदराणि च ॥
वातोदरे प्रशस्तोऽयं सर्वाजीर्णं व्यपोहति ।
कामलांपाण्डु रोगञ्च तथैव कुम्भकामलाम् ॥
—भैषज्य रत्नावली, उदररोगाधिकार, श्लोक ७८ से ८१ तक ।

पानी पियेगा तब तक विरेचन होगा। शीतल जल पीनेसे पुनः विरेचन न होगा।

रोग—जीर्ण ज्वर, प्लीहा रोग, उदर रोग, विशेषतः वातोदर, अजीर्ण, कामला, पाण्डु, आदि।

हरीतकी प्रयोग*—सौ हरड़ोंको तक्रमें स्विन्न करके कुशलतासे बीजको निकाल कर सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, पाँचो नमक, अजवायन, अजमोदा, यवक्षार, सर्जक्षार, सुहागा, हींग, लौंग, प्रत्येक के आठ तोले चूर्णको मिश्रित कर चुक्र तथा निम्बुके रससे तीन दिन भावना देकर उन हरड़ोंमें भर दें।

---

* हरीतक्यः शतं ग्राह्यं तक्रैः स्विन्नश्च कारयेत्।
यत्नाद् बीजं समुद्धृत्य चूर्णानीमानि पूरयेत्॥
षड्रूपणं पञ्चपटु यमानी द्वयमेव च।
त्रिक्षारं हिंगु दिव्यञ्च कर्षद्वयमितं पृथक्॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं चुक्राम्लेनापि भावयेत्।
लिम्पाक स्वरसेनापि भावयेच्च दिनत्रयम्॥
खादेच्चैवाभयामेकां सर्वाजीर्णविनाशिनीम्।
चतुर्विधमजीर्णञ्च वन्हिमान्द्यं विशूचिकाम्॥
गुल्म शूलादि रोगांश्च नाशयेदविकल्पितः।
—भैषज्य रत्नावली, अग्निमान्द्यादि रोगाधिकार, श्लोक ६२ से ६५ तक।

मात्रा—एकसे दो हरड़ प्रतिदिन।

रोग—अजीर्ण, मन्दाग्नि, विशूचिका, गुल्म तथा शूल आदि।

हरीतकी खण्ड†—त्रिफला, मोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, अजवायन, त्रिकटु, धनियाँ, सौंफ, सोया, लौंग, प्रत्येकका दो तोले चूर्ण; निशोथ और सनाय प्रत्येक सोलह तोला, हरड़ चौंसठ तोला, खाण्ड सवा तीन सेर यथाविधि पाक करें।

मात्रा—आधा तोला।

अनुपान—गरम जल या दूध।

रोग—अम्लपित्त, शूल, अर्श, वातरोग, कोष्ठवात, कटिशूल, आनाह (अफ़ारा) आदि।

---

†त्रिफलाब्दं चतुर्जातं यमानी कटुकत्रयम्।
धान्यं मधुरिका चैव शतपुष्पा लवङ्गकम्॥
प्रत्येकं कार्षिकं ग्राह्यं त्रिवृता स्वर्णपत्रिका।
पलद्वन्द्वप्रमाणेन सर्वतुल्या हरीतकी॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि सिता तद्द्विगुणामता।
दत्त्वैतानि विधानेन चीरेणोष्णेन सम्पिबेत्॥
हन्त्यम्लपित्तं शूलञ्च पक्षर्शांस्यानिलामयम्।
कोष्ठवातं कटिशूलमानाहमपि दारुणम्॥
भैषज्य रत्नावली, शूलरोगाधिकार, श्लोक १८९ से १९२ तक।

*अभयारिष्ट—हरड़ दस सेर, मुनक्का पाँच सेर, बायविडङ्ग एक सेर, महुए के फूल एक सेर, १२८ सेर जलमें पका कर ३२ सेर बचा लें। छान कर शीत होने पर दस सेर गुड़ डालें और निम्नलिखित प्रक्षेप देकर मृत्पात्रमें बन्द करदें।

---

*अभयायास्तुलामेकां मृद्वीकार्द्धतुलां तथा।
विडङ्गस्य दशपलं मधूककुसुमस्य च॥
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत्।
शीतीभूते रसे तस्मिन् पूते गुडतुलां क्षिपेत्॥
श्वदंष्ट्रां त्रिवृतां धान्यं धातकीमिन्द्रवारुणीम्।
चव्यां मधुरिकां शुण्ठीं दन्तीं मोचरसं तथा॥
पलयुग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृण्मये।
क्षिप्त्वा संरुध्य तत्पात्रं मासमात्रं निधापयेत्॥
ततो जातरसं ज्ञात्वा परिस्राव्य रसं नियेत्॥
बलं कोष्ठञ्च वन्हिञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत्॥
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं तथाष्टावुदराणि च।
वर्चोमूत्र विबन्धघ्नो वन्हिं सन्दीपयेत् परम्॥
—भैषज्य रत्नावली, अर्शोरोगाधिकार, श्लोक १०५ से ११० तक।

वाग्भट्ट और वंगसेन ने भी अभयारिष्ट को कुछ परिवर्तन के साथ अर्शः चिकित्सामें लिखा है।

प्रक्षेप द्रव्य—गोखरू, धनिया, निशोथ, धायके फूल, इन्द्रायणी, चव्य, सौंफ़, सोंठ, दन्ती मूल, तथा मोचरस, प्रत्येक १६ तोले,। एक मास तक रखें और छान कर प्रयोगमें लाएँ।

मात्रा—सवासे ढाई तोला तक।

रोग—अर्श, उदर, रोग मलबन्ध, मूत्र रोग, मंदाग्नि।

सामान्य उपयोग

वृक्षका मुख्यतया फलके कारण महत्व है। व्यापारमें, हरडकी मुख्यतया पाँच किस्में ज्ञात है जिनके नाम इसकी उत्पत्तिके स्थानोंके अनुसार रक्खे गये हैं। सूखा फल हरड़ और जंगी हरड़ दो मुख्य रूपोंमें बाज़ारमें आता है। चमडा कमानेके भारतीय पदार्थों में अत्यन्त उपयोगी हैं। अण्डाकृति और नोकदार तथा काटने पर हरिताभ वर्ण और रचनामें कठोर हरड व्यापारमें अच्छी समझी जाती है।

भारतमें चर्म-कर्म में हरड़ बहुत इस्तेमाल होती है। औषधि-रूपमें उपयोगकी अपेक्षा रँगने और चर्म-कर्ममें इसका उपयोग कहीं ज़्यादह होता है। यूरोपको भी इसी उद्देश्यके लिये भेजे जाते हैं। निर्यात मुख्यतया सूखे फलोंके रूपमें होता है।

अपरिपक्व फल चमड़ेको रंगने और कमानेमें तथा औषधि-व्यवहारमें प्रयुक्त होते हैं। चर्मकर्मके लिये कुछ

चर्मकार हलके हरे रंगके फलोंको पसन्द करते है। दूसरे फलोंकी अपेचा इनकी कीमत भी ज़्यादह होती है। कुछ लोग काले या भूरेसे रंगकी किस्मको पसन्द करते हैं। कुछ चर्मकार फलकी मज़बूती और सस्तेपनको देखकर खरीदते हैं।

भारतमें हरड रंगके रूपमें भी इस्तेमाल होती है। फलके छिलकेका चूर्णकरके पानीमें भिगो दिया जाता है। इसमें कपड़ा डालकर उबाल दिया जाय तो मैला या भूरा सा रंग आ जाता है। इसमें फिटकरी मिला देनेसे पीला पक्का रंग आ जाता है। लोहेके किसी लवण-सामान्यतया प्रोटोसल्फ़ेटके साथ मिलाकर काले रंगकी विभिन्न छायाएँ प्राप्त करनेमें हरड़का रंगके रूपमें विस्तृत उपयोग होता है। रंगकी गहराईके लिये थोड़ा सा गुड़ और लोह गन्धितके साथ गावका शुष्कफल (डियोस्पिरोस एम्ब्रियोटीरिस = Diospyros Embryopteris) मिला कर गहरा काला रंग बनाया जाता है। हरड़ और लोहस् गन्धित् (Ferrous Sulphate) को एक निश्चित अनुपातमें मिलानेसे ख़ाकी रंग बनता है। मद्रासमें हरड इसी तरहसे इस्तेमाल होती है और कपास, ऊन तथा चमडेको रँगनेमें अकेला भी काम आती है। उत्तर पश्चिम प्रांतोंमें निम्न मुख्य छायाएँ प्राप्त करने में इसका उपयोग होता है—काला, जैसा कि ऊपर वर्णन

किया गया है; हरा, हल्दी और नीलके साथ मिला कर; गूढ़ा नीला, नीलके साथ; भूरा, कत्थेके साथ। कालेको छोड़ कर अन्य रंगोमें अपना रंग देनेके बजाय यह मुख्यतया उनके रंगोंको गाढ़ा करनेका काम करता है जिनमें यह मिलाया जाता है। भारतमें सब जगह मंजीठ, हल्दी, टेसू आदिके साथ सहायक रूपमें उनके रंगोंको गाढा करनेके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। कीट-फल ऊन पर हलका पीला रंग देते हैं। कीट-फल स्याही बनाने, कपडा रंगने तथा चमड़ा कमानेमें भी प्रयुक्त होते है।

लोह-लवणांके साथ फल देसी स्याही बनानेमें काम आते हैं। फलोंकी थोड़ी प्रतिशतकतामें त्वचाके नीचेका भाग भुरभुरा जाता है। जिन फलोंमें यह हो जाता है वे चर्मकर्ममें काम नहीं आते, पर स्याही बनानेमें काम आ जाते हैं।

ओकके कीट-फलकी तरह हरडके कीट-फलों (galls) से अच्छी स्याही बनाई जाती है। कोरोमण्डल तट पर इनसे बहुत बढ़िया और टिकाऊ पीला रंग बनाया जाता है। तामिल लोग इन्हें कादुकाई और तेलिंग लोग अलिद काई कहते हैं। कीट फलोंमें टैनिक एसिड प्रचुर होता है और इसलिये चर्मकर्ममें तथा रंगोंको पक्का करनेके लिये रँगनेमें काम आते हैं।

हरडके पत्ते चारेके रूपमें पशुओंको खिलाये जाते हैं।

छाल चमड़ेको कमाने और रँगनेके काम आती है। यह कभी कभी ख़ाकी और काला रंग रंगनेमें और बंगाल तथा मनीपुरमें बाँसोको रँगनेमें काम आती है। छाल बहुत ग्राही होती है और रंगोंमें वही छायाएँ देती है जो बबूलकी फलियोंसे आती हैं, परन्तु ये कुछ अधिक पीली आभा लिए हुए होती हैं।

लकड़ी अच्छी टिकाऊ है। इस पर पौलिश अच्छी होती है। फ़र्निचर, बैलगाड़ियो, कृषि-उपकरणो और मकानोके बनानेमें काम आती है।

वृक्ष एक गोंद देता है। बरारमें यह बहुत इकट्ठीकी जाती है और अनेक दूसरी गोंदों —कीकर, धौरा, महुआ, बकायन, आदि के साथ मिला दी जाती है। गोंदों से इकट्ठीकी गई यह मिश्रित गोंद स्थानिक बाज़ारमें आती है और चिकित्सा प्रयोजनके लिये या रंगरेज़ोको रंगोंमें मिलानेके लिये बेच दी जाती है।

निर्यात

चर्म कर्मके लिये हरड़ युरोप भी भेजे जाते हैं। मद्रास, बम्बई और मध्यप्रांत, मुख्यतया इन तीन स्थानों से व्यापारिक हरडें इकट्ठीकी जाती हैं। मध्यप्रांतमें मण्डला, बालाघाट, रामपुर और जबलपुर प्रदेशोंसे बड़ी

भाग्रामें हरड़ बाहर भेजी जाती हैं। मद्रासमें विमलापट्टम निर्यातका बड़ा केन्द्र है।

चिकित्सोपयोग

भारतीय चिकित्सा-शास्त्रमें हरड़ इतना अधिक महत्त्व-पूर्ण द्रव्य समझा जाता है कि हिन्दू साहित्यमें इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक पौराणिक गाथा प्रसिद्ध है—जब इन्द्र देव स्वर्गमें अमृत पी रहे थे तो द्रवकी एक बूंद भूतल पर गिर पड़ी और उससे हरड़ वृक्षकी उत्पत्ति हुई।*

---

*पपात बिन्दोर्मेदिन्यां शक्रस्य पिबतोऽमृतम्।
ततो दिव्या समुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी॥
—भावप्रकाश, हरीतक्यादिवर्ग, श्लोक ५।

हरड़की उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक और गाथा इस प्रकार है:—सुधर्माकी सभामें अमृत पान करते हुये विष्णु भगवान्से अमृतके सात बिन्दु गिर पड़े और वे ज़मीनपर जहाँ जहाँ गिरे वहाँ विभिन्न प्रकारकी सात हरड़ें उत्पन्न हुई।—

सुधर्मायां गतोविष्णुः सुरासुर समावृतः।
पपौ सुधां स्वयं तस्मात्पतिता सप्त बिन्दवः॥
ततो हरीतकी जाता सप्तधा लोमहर्षदा।

यद्यपि युरोपियन चिकित्सामें हरड़का ज्ञान देरसे है पर इनका प्रयोग नहीं होता रहा। ईसाई युगके प्रारम्भिक भागमें ग्रीक इसको जानते थे। लिंश्टन (Linschoten), जो सोलहवी सदीके अन्तमें हिन्दुस्तान आया था, पाँच प्रकारकी हरडोंका वर्णन करता है। इससे पूर्व हरड सम्बन्धी ज्ञान गार्सिया दे ओर्टा (Garcia d' orta') ने दिया है। इसका टीकाकार डाक्टर पैलुडेनस (Paludanus) लिखता है कि पाँचों प्रकारकी सब हरडें उस समय हिन्दुस्तानसे आती थीं। सूखी, हुई आचार या मुरब्बेकी शक्लमें भी खाण्डमें सुरक्षित की हुई हरडें आती थीं। लिंश्टन लिखता है कि जितनी बडी हों उतनी अच्छी होती हैं, काला रंग लिये हुये और कुछ लालसे रंगकी, भारी और पानीमें डूब जाने वाली हरडें कफको निकालती हैं, मनुष्यकी बुद्धिको कुशाग्र करती हैं और दृष्टिको साफ़ करती हैं। ये शहद और खाण्डमें सुरक्षित रखी जाती हैं, ये शक्तिजनक और विरेचक हैं, इनके खानेसे श्वयथु अच्छी हो जाती है और वृद्धावस्थाके लिये इनका प्रयोग हितकर है, इनके सेवनसे भूख बढ़ती है और पाचन क्रियामें मदद मिलती है।

भारतीय चिकित्सा-ग्रन्थोंमें हरडको अनुलोमक, दीपक, बल्य और रसायन कहा गया है। खाँसी, दमा, मूत्ररोग, अर्श, आन्त्रकृमि, पुरातन अतिसार, मलबन्ध, अफ़ारा,

वमन, हिक्का, हृद्रोग, यकृत और प्लीहा वृद्धि, जलोदर, त्वग्रोगों, ज्वरो तथा अन्य अनेक रोगोंमें इसका प्रयोग होता है। बहेड़े और आँवलेके साथ मिलाकर त्रिफलाके नामसे प्रायः सब रोगोंमें विस्तृत रूपसे इनका प्रयोग किया गया है। शक्ति बढ़ाने, बुढापेके प्रभावको रोकने और ज़िन्दगीको लम्बा करनेके लिये रसायन बल्य रूपमें हरड़ का अद्भुत प्रयोग किया जाता है। वर्षा-ऋतुमें नमकके साथ, पतझड़में खाण्ड, शीतऋतुके पूर्वार्द्धमें अदरक और उत्तरार्द्धमें पिप्पली, वसन्तमें मधु और दो गरम महीनोंमें गुड़के साथ प्रति दिन प्रात काल एक हरड खानेका विधान है*। हरड़का गुण लिखते हुये चरक ऋषि लिखते हैंः—हरड़में लवण रसको छोडकर शेष पांचों रस होते हैं। हरड़ ऊष्ण है, कल्याण-कारिणी है, दोषोंका अनुलोमन करती है। लघु, दीपन, पाचन, आयुके लिये हितकर, दीर्घ आयु प्रदान करने वाली, पुष्टिकर, उत्कृष्ट वयः स्थापक, सब रोगोंको शान्त करने वाली

---

*सिन्धूत्थशर्करा शुण्ठी कणामधु गुडैः क्रमात्।
वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायन गुणैषिणा॥

—भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, वर्ग प्रकरण ६, श्लोक २४।

—भैषज्यरत्नावली, रसायनाधिकार, श्लोक १६।

तथा बुद्धि और इन्द्रियोंको बल देने वाली है †। प्रजास्थापन और वयःस्थापनकर 'दशेमानि' (दस औषधियों) में चरकने हरडका पाठ किया है‡। हरड़ को घीमें भून कर बनाये चूर्णको घीमें मिलाकर चाटने और उत्तम भोजन करते रहनेसे शरीरमें बल आता है, और शक्ति बढ़ती है§। महर्षि चरक लिखते हैं—हरड़ गुल्म, उदावर्त, शोष (क्षय), पाण्डु रोग, मद, अर्श, ग्रहणी दोष (संग्रहणी), पुराना विषम ज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, अफ़ारा (आनाह), प्लीहा, नवीन उदररोग, कफ प्रसेक (मुखसे कफ व लाला निकलना, या जुकाम), स्वर भेद, विवर्णता, कामला, कृमिरोग, श्वयथु (शोथ), दमा (तमक श्वास),

†हरतकीं पञ्चरसामुष्णामलवणां शिवाम् ।
दोषानुलोमिनीं लघ्वीं विद्याद्दीपनपाचनीम् ॥
आयुष्यां पौष्टिकीं धन्यां वयसः स्थापनी पराम् ।
सर्वरोगप्रशमनीं बुद्धीन्द्रियबलप्रदाम् ॥
—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १; श्लोक २७,२८ ।

‡चरक, सूत्रस्थान, अध्याय ४; १२ ।

§ हरीतकीं सर्पिषि संप्रताप्य समश्नतस्तत् पिबतो घृतञ्च ।
भवेच्चिरस्थायि बलं शरीरे सकृत्कृतं साधु यथा कृतज्ञे ॥
—वाग्भट्ट अष्टाङ्ग हृदय, उत्तरस्थान, अध्याय ३९,
श्लोग १४८ ।

वमन, नपुंसकता, अङ्गोका शिथिल हो जाना, विभिन्न कारणोंसे रसवाही स्रोतों (ग्रन्थियो) से रस आदि न बहना, छाती और फेफड़ोंमें कफ भर जाना, स्मृति और बुद्धि नाश, अपस्मार, उन्माद, इन्हें शीघ्र ही दूर करती है*। गोविन्ददास मधु भावित हरड़को इसी प्रकार अनेक रोगोंमें लाभकर समझता है।†

---

*कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं शोषं पाण्ड्वामयं मदम्।
अर्शांसि ग्रहणी दोषं पुराणं विषमज्वरम्॥
हृद्रोगं सशिरोरोगमतीसारमरोचकम्।
कासं प्रमेहमानाहं प्लीहानमुदरं नवम्॥
कफप्रसेकं वैस्वर्यं वैवर्ण्यं कामलां क्रमीन्।
श्वयथुं तमकं छर्दिं क्लैब्यमङ्गावसादनम्॥
स्रोतोविबन्धान्विविधान् प्रलेपं हृदयोरसोः।
स्मृति बुद्धि प्रमोहं च जयेच्छीघ्रं हरीतकी।
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १, श्लोक २९ से ३२ तक।

†दुर्नामश्वासकासज्वरवमथुतृषापाण्डुता नेत्ररोगान्
हिक्काकुष्ठातिसारभ्रममदकसननाजीर्णशूलप्रमेहान्।
तृष्णाशूलाम्लपित्तज्वरविततजरारोचकानाहदाहान्
हन्यादेतनावश्यं मधुनि परिगता पूतना चाम्लपित्तम्॥
—भैषज्य रत्नावली, रसायनाधिकार, श्लोक २०।

मुसलमान लेखक पके फलको सारक, पित्त और बलगमका नाश करने वाला कहते हैं।

अजीर्ण रोगी, रूक्ष आहार करने वाले, स्त्री भोग, मद्यपान या किसी विषके सेवनसे दुर्बल, भूख, प्यास और गरमीसे पीडित पुरुषको हरडका सेवन नहीं करना चाहिये, ऐसा चरक आचार्यका मत है* । नरहरि पण्डित और धन्वन्तरि इसमें हनुस्तम्भ गलग्रह, नवज्वर, शोष और मुखशोष,को और शामिल करते हैं तथा गर्भिणीको भी देने के लिए मना करते हैं† । रास्ता चलनेसे थके हुए, उपवासके

---

*अजीर्णिनो रूक्षभुजः स्त्रीमद्यविषकर्षिताः ।
सेवेरन्नाभयामेते क्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्च ये ॥

—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १, श्लोक ३३ ।

† हरीतकींतु तृष्णायां हनुस्तम्भे गलग्रहे ।
शोथ नवज्वरे जीर्णे गुर्विण्यां नैव शस्यते ॥

—राज निघण्टु, आम्रादिवर्ग, श्लोक २२६ ।

तृष्णायां मुखशोषे च हनुस्तम्भे गलग्रहे ।
नवज्वरे तथा क्षीणे गर्भिण्यां न प्रशस्यते ॥

—धन्वन्तरि निघण्टु, गुडूच्यादि वर्ग ।

कारण कमज़ोर और जिसके खूनका क्षय हो गया है; ऐसे व्यक्तियोंको हरड़ खानेसे भावमिश्र रोकता है।‡

हिन्दू लोग अन्य हरडोंकी अपेक्षा जंगी हरड़को चिकित्सामें बहुत ज़्यादह इस्तेमाल करते हैं। सामान्यतया इसका प्रयोग विरेचनके लिए होता है। बिना गर्मी और क्षोभ उत्पन्न किये यह शीघ्रतासे कार्य करती है। चिर-स्थायी मलबन्ध वाले और जिन्हें पित्तकी अधिकताकी शिकायत रहती है या कोई अन्य ऐसी शिकायत हो जिसमें एक कोमल अनुलोमन लेनेकी बहुधा ज़रूरत रहती है, ऐसे व्यक्ति हरडके प्रयोगको बहुत सुविधाजनक पायेंगे।

पक्व फल मुख्यतया विरेचनके लिये प्रयुक्त होता है और समझा जाता है कि पित्त और कफको दूर करता है। यह सौंफ़, जीरा, धनियाँ आदि सुगन्धित द्रव्योंके साथ मिला कर दिया जा सकता है। अपक्व फल (हलिलेह-ए-हिन्दी) ग्राही और सारक गुणके कारण बहुत उपयोगी समझा जाता है और यह प्रवाहिका तथा अतिसारकी उत्तम औषधि है, यह भी सुगन्धित और पाचक द्रव्योंके साथ दिया जाता है।

---

‡अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशोलङ्घनकर्शितश्च।
पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्तरक्तस्त्वभयां न खादेत्॥
—भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, वर्गप्रकरण ६, श्लोक ३५।

विरेचनके लिये हरडको लेनेका एक तरीक़ा यह है कि फलके गूदेका दो से चार ड्राम चूर्ण लेकर कषाय या फाण्ट बना लें। इसमें थोडे सौंफके बीजोंको भी डाल देना चाहिये और शहद या खाण्ड डाल कर पीना चाहिये। कई लोग रातको बिस्तरमें जानेसे पूर्व हरीतकी चूर्णकी फक्की लेकर ऊपरसे गरम पानी पी लेते हैं जिससे सुबह अनुलोमन हो जाय। कोमल प्रकृति वालोंको आधेसे एक तोला हरीतकी खण्ड रातको सोते समय एक पाव गरम दूध या गरम जलसे देना चाहिये। इससे सुबह पेट साफ़ हो जाता है। हरड छः, लौंग या दालचीनी एक ड्राम, जल चार औंस; दस मिनट तक उबालकर छान लें, विरेचनके लिये यह सब एक मात्रा सुबह ली जानी चाहिये। हरडका मुरब्बा रातको समय दस्तावरके रूपमें लिया जाता है। अर्शमें कठोर कोष्ठकी प्रकृति वालोंको मलके अनुलोमनके लिये गोमूत्रमें उबाली हुई हरड गुड़के साथ खिलायें*। शार्ङ्गधर ने हरड़को उत्तम अनुलोमकके रूपमें देखा है। मलोंका पाक और भेदन करके, वह लिखता है:—
जो अवरोधको नीचे ले जाय वह अनुलोमन द्रव्य समझना

---

*गोमूत्राध्युषितामद्यात् सगुडां वा हरीतकीम्॥
—अष्टाङ्ग हृदय; चिकित्सा स्थान; अध्याय ८;
श्लोक ५५।

चाहिये, जैसे हरीतकी* । सुश्रुत फलोंमें विरेचनके लिये हरड़को श्रेष्ठ समझता है† । घीमें भूनी हुई हरड़के चूर्णके साथ पिप्पली चूर्ण और गुड़ मिलाकर रोगीको अनु-लोमनके लिए दिया जाता है‡ ।

आमातिसारमें पहले संग्राहक औषधि नहीं दी जानी चाहिये क्योंकि मलके साथ दोषोंके अवरुद्ध हो जाने पर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये उसकी उपेक्षा करनी चाहिए और स्वयं प्रवृत्त हुए मलमें अथवा कष्टसे आते हुये मलमें हरड़ देनेसे मलके साथ दोषोंके बाहर निकल जाने पर आमातिसार शान्त हो जाता है,

---

*कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्वा बन्धमधो नयेत् ।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥

—शार्ङ्गधर संहिता; पूर्व खण्ड; चतुर्थ अध्याय; श्लोक ३, ४ ।

†फलेष्वपि हरीतकी ।

—सुश्रुत

‡सगुडां पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टां हरीतकीम् ।
....भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥

—चरक; चिकित्सत स्थान; अध्याय १४; श्लोक ११९, १२० ।

शरीर हलका होता है और भूख बढ़ती है§। पक्वातिसारमें आम पाचनके लिये गरम जलके साथ हरड़का चूर्ण खायें*। चूर्णकी पच्चीस सेण्टीग्रामकी गोलियां प्रवाहिका, विशूचिका, अतिसार और पुरातन अतिसारमें दी जाती हैं। हरड और पिप्पलीके समान भाग चूर्णको गरम पानीके साथ खानेसे बारबार थोड़ी थोड़ी मात्रामें होने वाले प्रबल और शूलयुक्त अतिसार नष्ट होते हैं†। उदर रोगोंमें हरडके चूर्णको गोमूत्रके साथ प्रयोग करायें‡। चरक लिखते हैं, उदर रोगोंमें एक हज़ार हरड़

§न तु संग्राहणं देयं पूर्वमामातिसारिणे।
विबध्यमानाः प्रागुदोषा जनयन्त्यामयान् बहून्॥
तस्मात् उपेसितोऽक्लिष्टान् वर्तमानान् स्वयं मलान्।
कृच्छ्रं वावहतान् दद्यादभयां सम्प्रवर्तिनीम्।
तया प्रवाहिते दोषे प्रशाम्यत्युदरामयः।
जायते देह लघुता जठराग्निश्च प्रवर्द्धते॥

—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १९, श्लोक १८, २० और २१।

*पथ्या वा .... उष्ण वारिणा।

—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १९

† —सुश्रुत, स० उ० अ० ४०

‡......... ..गोमूत्रेणाभयां वा प्रयोजयेत्।

—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १३, श्लोक १४९।

खाये§ । कई विद्वान् एक हजार हरड़ोंका प्रयोग रसायनोक्त पिप्पली वर्द्धमानके क्रमानुसार करनेके लिये कहते हैं । यह दस हरड़का वर्द्धमान क्रम प्राचीन काल की उत्तम मात्रा है । मध्यम मात्रा दिनमें छः हरीतकी और अल्प मात्रा तीन हरीतकी समझनी चाहिये । परन्तु ये सब मात्रायें आधुनिक पुरुषोंके लिये अत्यधिक हैं । इससे आज कलके अपेक्षाकृत निर्बल पुरुषोंको लाभके स्थान पर हानि होनेका भय है । अतः कुछ विद्वान् ऐसा विधान करते हैं—पहले एक हरड़के सेवनसे आरम्भ करें । दस दिन तक प्रति दिन एक हरड़ बढ़ाते जायँ । इस प्रकार प्रथम दस दिन तक पचपन हरीतकीका सेवन होगा । उसके बाद नब्बे दिनोंमें नौ सौ हरड़ोंका सेवन हो जायगा । फिर प्रति दिन एक एक कम करते जायँ, अर्थात् पहले दिनोंमें उतरते क्रमसे लेते जांय । इस प्रकार इन दिनोंमें पैंतालीस हरड़ोंका सेवन होता है । और एक सौ नौ दिनोंमें ५५+९००+४५=१००० हरड़ोंका सेवन होगा । यह क्रम भी बहुत ठीक नहीं रहता । चिकित्सकको चाहिये कि रोगी के बल और दोष आदिकी परीक्षा करके जैसा उचित समझे वैसा ही करे ।

---

§हरीतकी सहस्रं वा ....।

—चरक, चिकित्सा स्थान, अध्याय १३, श्लोक १५१ ।

वमनमें मधुके साथ हरड़का चूर्ण खायँ*। आमाजीर्ण और मलबन्धमें गुडके साथ हरडका सेवन करें†। हरड़के चूर्णको उपयुक्त मात्रामें गुड़, सोंठ या सेंधानमकके चूर्णके साथ वात, व पित्तके दोषोंमें सेवन करनेसे जठराग्नि विशेष रूपसे प्रदीप्त होती है‡। पित्त शूलकी शान्तिके लिये गुड़ और घीके साथ हरड़का चूर्ण खाया जाता है§। गोमूत्र पाचित हरड़के चूर्णमें लोह भस्म मिलाकर गुड़के साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल नष्ट हो जाता है‖। हिचकीमें कोसे जलके अनुपानसे हरड़ खानेसे

---

*........ लिह्यान्मधुनाऽभयां वा।

—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय २०, श्लोक २८।

†आमेस्वजीर्णेषु गुदामयेषु
वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात्॥
गुडेन पथ्यां तृतीयाम्........। —भावप्रकाश

‡ हरीतकीं भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा।
सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी॥

—चक्रदत्त, अग्निमान्द्य चिकित्सा, श्लोक ११।

§ सगुडां घृतसंयुक्तां भक्षयेद्वाहरीतकीम्॥

—भावप्रकाश

‖ मूत्रान्तः पाचितां शुष्कां लौह चूर्णसमन्विताम्।
सगुडामभयामद्यात् सर्वशूल प्रशान्तये॥

—चक्रदत्त, शूल चिकित्सा, श्लोक ८०।

लाभ होता है। कफजन्य पाण्डुमें गोमूत्रमें पकाई हुई हरड़ लाभ करती है ¶। हरड़की गुठलीको गोदुग्धमें सिद्ध करके पथरीमें पीनेके लिये वाग्भट्ट कहता है ‡।

अभ्यन्तर अर्शमें प्रतिदिन प्रातः गुड़ और हरड़का सेवन करना चाहिये §। गुड़के साथ हरड़का चूर्ण प्रति दिन भोजनसे पूर्व खानेसे रक्तार्श दूर होता है *। अर्शके लिए हरड़का कषाय ग्राही प्रक्षालन द्रव्य है। अर्शोघ्न 'दशेमानि' में चरक ने हरड़का उल्लेख किया है †। गोमूत्रमें एक रात रखी हुई हरड़को गुड़के साथ

¶ कफपाण्डुस्तु गोमूत्रक्लिन्नयुक्तां हरीतकीम्।

—चरक, चिकित्सितस्थान, अध्याय १६; श्लोक ५६।

‡ हरीतक्यस्थि सिद्धं वा.. .. .. ॥

—अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान, अध्याय ११ श्लोक ३३।

§ प्रातः प्रातर्गुड़हरीतकीमासेवेत।

—सुश्रुत, चिकित्सित स्थान, अध्याय ६।

*सगुडामभयां वाऽथ प्राशयेत् पौर्वभोक्तिकीम्॥

—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १४, श्लोक ६६।

†—चरक, सूत्र स्थान, अध्याय ४; ३६।

या हरड़के चूर्णको तक्रके अनुपानसे अर्शमें प्रयोग करनेसे लाभ होता है‡ ।

सन्निपात-ज्वरमें दाह दूर करनेके लिये हरड़ चूर्णको तेल, घी और मधुके साथ चाटे §। ज्वरहर दशेमानिमें चरक ने हरड़को गिनाया है ‖ ।

वातरक्तमें गुड़ और हरड़का सेवन करें ¶। एक दो हरड़ोंको गुड़के साथ खाकर गिलोयका क्वाथ अनुपानमें पियें तो वातरक्त, जिसमें जानुपर्यन्त स्फुटित हो गया है, शान्त हो जाता है/ ।

---

‡ गोमूत्राध्युषितां दद्यात्सगुडां वा हरीतकीम् ।
हरीतकीं तक्रयुतां प्रयोजयेत् ॥
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १४, श्लोक ६८ ।

§ पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैः लिह्याद्दाहविनाशिनीम् ॥
—भावप्रकाश

‖ —चरक, सूत्र स्थान, अध्याय ४ ।

¶ . ... सर्वेषुगुडहरीतकीं वा सेवेत् ।
—सुश्रुत, चिकित्सा स्थान, अध्याय ५ ।

/ हरीतकीः प्राश्य समं गुडेन एकाथवा द्वे च ततो गुडूच्याः ।
क्वाथोऽनुपीतः शमयत्यवश्यं प्रभिन्नमाजानुरवाररतरक्तम् ॥
—भैषज्यरत्नावली, वातरक्ताधिकार, श्लोक ६ ।

कफज श्लीपदमें हरड़ फक्कको गोमूत्रके साथ पियें$ । गुल्ममें गुड़के साथ भी हरड़ खाई जाती है× । गोमूत्र सिद्ध हरीतकी, तेल और सेंधा नमकको सम भागमें मिलाकर प्रातःकाल कफ-वातज वृद्धिके नाशके लिए सेवन करें ❀।

एक हरड़को यवकुट करके चिलममें रखकर पीनेसे दमेका दौरा बन्द होता है। चरकमें कासहर दस औषधियोंमें हरड़ परिसंख्यात है† ।

हरड़ोंमें प्रचुर परिमाणमें गैलिक एसिड होनेके कारण पुरातन व्रणों और घावोंमें बाह्य प्रयोगमें स्थानिक लेप के रूपमें, और मुख पाकमें गरारोंके रूपमें इनका प्रयोग किया जाता है।

बच्चों और युवाओंके मुख पाकमें इसका प्रयोग किया जाता है। कण्ठ रोगमें हरड़का कषाय मधुके साथ पिलाया

$ पिबेद्वाप्यभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमन वा ।

—सुश्रुत, चिकित्सा स्थान, अध्याय १५

× .. . .. सगुडां वा हरीतकीम् ॥

—सुश्रुत, उत्तरतन्त्र, अध्याय ४२ ।

❀हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैलां लवणान्विताम् ।
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहा ॥

—भैषज्यरत्नावली, वृद्धिरोगाधिकार श्लोक ६८ ।

†—चरक, सूत्रस्थान, अध्याय ४

जाता है*। कण्ठ व्रणके लिये कषाय ग्राही प्रक्षालन द्रव्य है। दिनमें दो-तीन बार इसके कषायसे गरारे करने चाहिये। सिक्किमके पहाड़ी लोग कण्ठव्रणकी औषधिके रूपमें फलोंका व्यवहार करते हैं। बूढ़े लोग कत्थेके साथ हरड़के चूर्णको दाँतोंको मज़बूत करनेके लिये चबाते हैं।

फलके बहुत सूक्ष्म कल्कको कैरन तेलके साथ मिला कर दाह और छालों पर लगानेसे अकेले कैरन तेल लगाने की अपेक्षा आराम शीघ्र होता है। त्वचाके रोगोंमें लेप रूपमें हरड़ लाभ करती है चरक ने कुष्ठघ्न 'दशेमानि'में हरड़को परिगणन किया है+।

फलोंके यवकुट चूर्णको पानीमें भिगोकर रात भर रखा रहने देकर प्रातःकाल उससे आँख धोई जाय तो यह आँखोंके लिये बहुत ठण्डा प्रक्षालन द्रव्य समझा जाता है। इसके हलके जलीय शीत कषायसे प्रतिदिन आँख धोनेसे आँखोंकी जलन शान्त होती है। आँखोंके रोगोंमें घीमें भुनी हुई हरड़का लेप बनाकर आँखके चारों ओर

---

*हरीतकी कषायें वा पेयो माक्षिक संयुतः ॥
—अष्टाङ्ग संग्रह, उत्तरस्थान, अध्याय २२, श्लोक ५५।

+ खदिराभयामलकहरिद्रारुष्करसप्तपर्णारग्वधकरवीर-विडङ्गजातिप्रवाल इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि भवन्ति।
—चरक, सूत्रस्थान, अध्याय ४, ३७।

लगाया जाता है। फलोंको जलाकर बनाई भस्म मक्खनके साथ व्रणों पर उत्तम मरहमके रूपमें इस्तेमाल होती है। मक्खनकी जगह वैज़लीनका भी प्रयोग किया जा सकता है।

सहायक ग्रन्थ

(१) फ्लौरेस्ट फ्लोरा; डी० ब्रैण्डिस (१८७४)।

(२) इण्डियन ट्रीज़; ब्रैण्डिस।

(३) फ्लोरा इण्डिका; विलियम रौक्स बर्ग १८७४)।

(४) इण्डिजिनस ड्रग्स औफ़ इण्डिया; कनाई लाल दे (१८९६)।

(५) एडिक्शनरी औफ़ दि इकौनोमिक प्रोडक्ट्स औफ़ इण्डिया; वाट (१८९३)।

(६) दि कमर्शियल प्रौडक्ट्स औफ़ इण्डिया; सर जार्ज वाट (१९०४)

(७) एमैनुअल औफ़ इण्डियन ट्रीज़; गैम्बल (१९०२)।

(८) सिल्विकल्चर औफ़ इण्डियन ट्रीज़; ट्रूप (१९२१)।

(९) इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स; बसु एण्ड कीर्तिकर (१९१९)।

(१०) कमर्शियल ड्रग्स औफ़ इण्डिया; एन० बी० दत्त (१९२८)।

(११) इण्डिजिनस ड्रग्स औफ़ इण्डिया; आर० एन० चोपड़ा (१९३३)।

(१२) ए डिक्शनरी औफ़ दि इकौनोमिक प्रौडक्ट्स औफ़ दि मलायापेनिन्सुला; आइ० एच० बुर्किल (१६३५)।
(१३) चरक संहिता; जयदेव विद्यालङ्कार (१९३६)।
(१४) सुश्रुत संहिता।
(१५) भषज्यरत्नावली; जयदेव विद्यालङ्कार (१९३२)।
(१६) चक्रदत्त; सदानन्द शर्मा (१६२६)।
(१७) राज निघण्टु
(१८) कैयदेव निघण्टु; सुरेन्द्र मोहन (१६२८)।
(१९) भावप्रकाश निघण्टु
(२०) धन्वन्तरि निघण्टु

आदि, आदि।

बहेड़ा

नाम

हिन्दी – बहेड़ा।

संस्कृत* —उत्पत्तिबोधक नामः —विन्ध्याजात (विन्ध्या पर्वतमें उगने वाला)।

---

*संस्कृत लेखकोंके शब्दोंमें बहेड़ेके नाम हैं—

विभीतक. कर्षफलो वासन्तोऽक्षः कलिद्रुमः।
संवर्तको भूतवासः कल्कोहार्यो बहेडकः॥
—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग।

विभीतकस्तैलफलो भूतवासः कलिद्रुमः।
संवर्तकस्तु वासन्तः कल्किवृक्षो बहेडकः॥
हार्यः कर्षफलः कल्किधर्मघ्नोऽक्षोऽनिलघ्नकः।
विभीतकश्च कासघ्नः स प्रोक्तः षोडशाह्वयः॥
—राजनिघण्टु; आम्रादि एकादश वर्ग।

विभीतकस्त्रिलिङ्गः स्यादक्षः कर्षफलस्तथा।
कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः॥
—भावप्रकाश; हरितक्यादि वर्ग; श्लोक ३४।

विभीतकः कर्षफलो भूतवासः कलिद्रुमः।

परिचयज्ञापक नाम :—

कलिक, कलिक वृक्ष, कलिद्रुम (कलि का वृक्ष, नलके सारथी बाहुकके शरीरसे उत्पन्न कलिको जब नल शाप देने लगा तब वह भयातुर होकर बहेड़ेके पेड़में छिप गया†); कलियुगालय (कलियुग ने इसे अपना घर बना लिया है); भूतवास (कलि रूप भूतका घर); विभीतक (विभेत्यस्माद्;

वासन्तोऽक्षो विन्ध्यजातः संवर्तस्तिलपुष्पकः ॥

—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग; श्लोक ३१ ।

विभीतको भूतवासो मधुबीजो बहेडकः ।
धर्मद्वेषी वसन्तार्त्तो ह्यर्यक्षो कुशिकस्तुषः ॥
वासन्तोऽक्षोविन्ध्याजातस्तिलपुष्पः कलिद्रुमः ।
कल्पद्रुमः कर्षफलस्तु मलो रोमहर्षणः ॥

—कैयदेवनिघण्टु; ओषधिवर्ग श्लोक २२५, २२६ ।

कैयदेवके 'कलिद्रुम' और 'कल्पद्रुम' दोनों पर्याय विपरीत अर्थवाची मालूम होते हैं। एक वृक्षको हीनता प्रदर्शित करता है और दूसरा उसके महत्वको दिखाता है। 'वसन्तार्त्त' और 'वासन्त' भी इसी तरह विपरीत अर्थवाची नाम हैं।

† एवमुक्त्वा ददौ विद्यामृतुपर्णो नलाय वै ।
तस्याक्षहृदयज्ञस्य शरीरान्निःसृतः कलिः ।
तं शप्तुमैच्छत् कुपितो निषधाधिपतिर्नलः ।

भूत-कलि-का डेरा होनेसे लोग इससे डरते हैं); धर्मद्वेषी, धर्मघ्न (जूआ खेलनेसे धर्म नाश हो जाता है, और क्योंकि जूएमें बहेड़ेके बने पासोंसे खेल होता था इसलिए जूएके साधन-पासोंके उत्पादक वृक्षका नाम भी धर्मद्वेषी या धर्मघ्न पड़ गया); तिलपुष्प (तिल सदृश-छोटे फूलों वाला); वसन्तार्त्त (वसन्तसे दुःखित ?); रोमहर्षण (फल के ऊपर मखमली मुलायम और चिकने रोएँ होते हैं); अक्ष (फल वज़नमें एक अक्ष अर्थात् तोला भर होता है, या इसकी लकड़ीसे जूएकी खेलमें पासे—अक्ष—बनाये जाते हैं); कर्षफल (फल तोलमें एक एक कर्ष-तोला-होते हैं); मधुवीज (मीठे बीजों वाला फल); तैलफल (बीज मज्जासे तेल निकलता है); बहेड़क (बहेड़ा)।

तमुवाच कलिर्भीतो वेपमानः कृताञ्जलिः ॥
ये च त्वां मनुजा लोके कीर्त्तयिष्यन्त्यतन्द्रिताः ।
यत्प्रसूतं भयं तेषां न कदाचिद्भविष्यति ॥
भयार्त्तं शरणं प्राप्तं यदि मां त्वं न शप्स्यसे ।
एवमुक्तो नलो राजा न्ययच्छत् कोपमात्मनः ॥
ततो भीतः कलिः क्षिप्रं प्रविवेश विभीतकम् ।

— महाभारत; वनपर्व; अध्याय ७२; श्लोक ३०, ३३, ३७, ३८ ।

वामन पुराणके सत्रह अध्यायमें भी 'कलिद्रुम' के सम्बन्धमें एक कथा है, पाठक वहाँ देख सकते हैं ।

गुण प्रकाशक संज्ञा—विभीतक (विगतं भीतं रोग-भयमस्मात्; इसके सेवनसे रोग होनेका भय जाता रहता है); तुष (तुष्यति; रोग निवारण करके जीवोंको प्रसन्न करता है); मल (मलकारक-अनुलोमक फल); कासघ्न (खाँसीको नाश करने वाला); विषघ्न (विष नाशक); अनिलघ्नक (वायुनाशक)।

बंगाली—बहेरा।

गुजराती—बहेड़ा।

गढ़वाली—बयड़ा।

मराठी—बेहड़ा, बहेला।

कांगड़ा—भेड़ा, भेड़ी।

कर्णाटकी—तरि।

तामिल—अक्कदम्, तांन्रिक-काय।

तेलगु—ताडि, तान्द्रक-काय।

काश्मीरी—बहेर।

वर्मी— थित्सिन, टिस् सिन्।

आसामी—हुलुच, बौरी।

सिंहाली—बलू, बुलगाह।

कोंकण—गोटिंग।

मलाया—तान्नि।

तुर्की—दादि।

अरबी—बलिलुज, बेलेयलुज, बलिलाऊ।

फ़ारसी—बलेले, देलायलेह् ।

अंग्रेज़ी—बेलेरिक माइरोबैलन (Beleric myrobalon) ।

लैटिन—टर्मिनेलिया बेलेरिका, रौक्सबर्ग (Terminalia belerica, Roxb.) ।

नैसर्गिक वर्ग—कोम्ब्रिटेसी (Combretaceæ)

प्राप्ति-स्थान

भारत, बर्मा और लंकाके जंगलोंमें सर्वत्र, मैदानोंमें और कम ऊँचे पहाड़ों पर लगभग तीन हज़ार फ़ीटकी समतासे नीचे मिलता है । सिन्ध, पश्चिमीय राजपूताना और दक्षिणीय पञ्जाबके शुष्क और बंजड़ स्थानों पर नहीं होता । हिमालयकी तराईमें और अवधके साल-जंगलोंमें प्रायः मिलता है । शिवालिक शैल पर, पेशावरमें, सिन्धु नदके किनारेकी भूमिमें, कोयम्बटूर और बलियाके जंगलमें, ग्वालपाड़ा, सुखनगर, गोरखपुर, धायतोला, और मोरङ्ग शैलमालामें बहेड़ेके वृक्ष बहुतायतसे पाये जाते हैं । भारतीय प्रायद्वीपमें यह बहुधा आर्द्र घाटियोंमें पाया जाता है । मलक्का, जावा और मलायामें यह वृक्ष होता है । लङ्कामें दो हज़ार फ़ीट ऊँचे स्थलों पर बहुत मिल जाता है ।

वर्णन

जंगलोंमें बहेड़ा साधारण वृक्ष है । इसका वृक्ष दूरसे ही पहचाना जा सकता है और पूर्णतया बढ़ा हुआ वृक्ष

सुन्दर दिखाई देता है। स्वभावमें यह झुण्डोंमें रहने वाला वृक्ष है और इधर-उधर बिखरे हुये भी इसके वृक्ष उगते हैं। सागौन, साल और असन आदिके जंगलोंमें पाया जाता है।

बहेड़ेका वृक्ष अस्सीसे एक सौ बीस फ़ीट तक ऊँचा चला जाता है। ऊँचे सीधे, नियमित आकृतिके तनेकी ऊँचाई छःसे दस और कभी-कभी सोलहसे बीस फ़ीट तक पहुँच जाती है। घेरा दस फ़ीट या इससे अधिक होती है।

वृक्षकी छाल नीलाभ या राखके ऐसे रंगकी भूरी, एक-तिहाई इंच मोटी लम्बाईके रुखमें अनेक सूक्ष्म दरारों वाली और अन्दरसे पीले रंगकी होती है। लकड़ी सख्त, पीताभ-धूसर और अन्तःकाष्ठ (heart-wood) अविद्यमान होती है। वार्षिक चक्र (annual rings) अस्पष्ट, छिद्र बहुत कम, बड़े और बहुधा अर्ध-विभक्त होते हैं। पौधेकी वृद्धि साधारण होती है। प्रति इंच अर्ध व्यासमें तीनसे सात वृत्त (rings) होते हैं।

छोटी शाखाओं, डिम्बाशय और पुष्पछत्र (calyx) के बाह्यपार्श्व पर जंगारके रंगके रूई जैसे मुलायम और सूक्ष्म रोम होते हैं। छोटी शाखाओंके सिरों पर पत्ते गुच्छोंमें होते हैं। आरम्भावस्थामें पत्ते बहुत थोड़े बारीक रोओंसे ढके होते हैं। पूर्णवृद्धि पर स्निग्ध (glabrous) कांचेसे पीले, अण्डाकृति-लट्वाकार (obovate-elli-

ptic); आधार प्रायः असमान होता है । फलक (blade) चार से नौ इञ्च; पत्रवृन्त (petiole) पत्ते की एक-तिहाई लम्बाईसे बड़ा, डेढ़से तीन इंच लम्बा होता है । पत्तेमें मुख्य बाह्य नाड़ियाँ मध्य पसलीके दोनों पार्श्वोंमें पाँचसे आठ होती हैं। फ़रवरी—मार्चमें पत्ते गिर जाते हैं और ताम्र या चर्मवर्णके नये पत्ते अप्रैलमें निकलते हैं । हरी आभा लिए हुए सफ़ेद या पीले फूलोंके स्तवक अप्रैलमें नवीन पत्तोंके साथ प्रकट होते हैं। विवृन्तक स्तवक (spikes) कोमल, तीनसे छः इंच लम्बे, चलने वाले सालकी नवीन शाखाओं (shoots) पर, लगे हुए या गिरे हुए पत्तोंके अक्षोंमें निकलते हैं। इनमें मधु सदृश तीव्र गन्ध आती है जो प्रायः समय-समय पर अत्यधिक उग्र हो जाती है, और तेज़ बदबू मालूम होने लगती है । पुरुष और मादा फूल मिले हुए होते हैं। पुष्पछद (calyx) के अन्दर के पार्श्वमें ऊन जैसे लम्बे भूरे बाल होते हैं।

फल नवम्बरसे फ़रवरी तक पकते हैं और शीत तथा ग्रीष्म ऋतुमें गिर जाते हैं । फल शुष्क, गूदेवाला, एकसे डेढ़ इंच लम्बा, अण्डाकार, कम्बराकृति (pyriform), भूरे मखमली मुलायम और चिकने रोओंसे ढका हुआ और पाँच अस्पष्ट रेखाओं वाला होता है। इसके अन्दर एक सख़्त, मोटी दीवारवाली काष्ठमय (woody) हलकी

पीली ०·७ से १·१ इंच लम्बी, पाँच रेखाओ वाली (pentagonal) गुठली होती है। इसके अन्दर मीठी तैलीय गिरी होती है, जिस पर आधारसे सिरे पर जाती हुई तीन स्पष्ट रेखाएँ होती हैं।

वृक्ष पर लगे हुये अपक्व फलोंमें बरसातमें कीड़े लग जाते हैं और ये ज़मीन पर गिर जाते हैं। ज़मीन पर पड़े हुये फलोंकी कठोर गुठली कीड़ोंसे बहुत अधिक छिदी हुई होती है और इस तरह सारी फ़सल चौपट हो जाती है। गुठलियाँ भी बहुधा अन्दरकी गिरीकी चाहसे गिलहरी, सुअर और दूसरे प्राणियोंसे फोड़ी हुई होती है और कुछ स्थानों पर वर्षा-ऋतु के प्रारम्भमें एक भी अच्छा बीज पाना मुश्किल होता है। फलके गूदेवाले भागका और सख़्त गुठलीका प्रकृतिमें जहाँ यह उपयोग नहीं होता वहाँ ज़मीन पर पड़ा-पड़ा यह सड़ जाता है, या दीमकोंसे खाया जाता है। गुठली इस तरह प्रायः सम्पूर्णतया या आंशिक रूपमें मिट्टीसे ढाकी जाती है।

इतिहास

बहेड़ेका सबसे प्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेदमें* मिलता

---

* प्रावे पा मां बृहतो मादयन्ति
प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो
विभीदकोजागृविमह्यमच्छान्॥
—ऋग्वेद; मण्डल १०; सूक्त ३४।

है। ऋक्कालमें यह बहुत महत्त्वपूर्ण द्रव्य समझा जाता था। ऋक्कालीन लोग सबसे श्रेष्ठ औषधि सोमके समान इसको लाभकारी समझते थे। इसकी लकड़ीका भी उपयोग किया जाता था और मालूम होता है कि जूएके खेलमें बहेड़ेके बने पासोंसे खेलना अधिक पसन्द किया जाता था।

महाभारत† और पुराण‡ में भी बहेड़ेका वर्णन मिलता है।

चरक और सुश्रुत आदिके समयमें बहेडेका स्वतंत्र रूप से व्यवहार प्रायः नहीं होता था। आजकल भी इसका उपयोग अन्य द्रव्योंके साथ या त्रिफलाके अंग रूपमें होता है स्वतंत्ररूपसे इसका प्रायः नहीं होता।

भेद

विभिन्न वृक्षोंसे मुख्यतया दो किस्मोंके फल मिलते हैं। एक आकृतिमें लगभग मण्डलाकार (globular) और आधेसे पौन इंच व्यासके होते हैं। दूसरे अण्डाकार (ovoid) और आकारमें पहलीकी अपेक्षा दुगुने बड़े होते हैं।

कृषि

बीजकी उगनेकी शक्ति अच्छी है और हरड (टर्मिने-

† देखिये—महाभारत; वनपर्व; अध्याय ६४ और ७२।

‡ देखिए—वामन पुराण; अध्याय १७।

लिया मिवुला) से तो बहुत अच्छी है। परीक्षा करने पर ताज़े बीजोंमें छियासीसे सौ प्रतिशतक और एक साल तक रक्खे हुए बीजोंमें पाँचसे चालीस प्रतिशतक उगनेकी शक्ति मौजूद थी।

बीज या सारा फल नर्सरीमें मार्च या अप्रेलमें बोया जाना चाहिए। मिट्टीसे ढाक कर नियमित पानी देनेसे सामान्यतया बोनेसे एक या दो मासमें अंकुरोत्पत्ति हो जाती है। पहली बरसातमें गीली मौसममें पौधोंका पृथक्करण होना चाहिए।

वृद्धिकी गति सामान्य है। अनुकूल अवस्थाओंमें वृद्धि शीघ्र होती है। पहली मौसममें साधारणतया पाँचसे आठ इंच ऊँचाई पहुँच जाती है। धीरे-धीरे वृद्धि अधिक शीघ्र होने लगती है। विशेषकर तब जब कि पौधोंकी निलाई नियमितकी जाती हो। यद्यपि विजातीय घास-पातमेंसे वे अपना रास्ता बना लेते हैं, परन्तु इससे उनकी वृद्धिमें बहुत बाधा पहुँचती है। छोटे पौधे सीधा बढ़ते हैं और दूसरे सालसे वे मज़बूत पार्श्वीय शाखायें उत्पन्न करने लगते हैं। जड़ बहुत शीघ्रतासे बढ़ती है। केवल एक साल पुराने अर्थात् दूसरी मौसममें खोदे गये पौधोंकी मुख्य-मूल (tap root) साढ़े तीन फ़ीट लम्बी थी।

पहले एक-दो साल तक पौधे छायामें अच्छे रहते हैं परन्तु सघन छाया बादमें इन्हें दबा देती है और मार

डालती है। आँधी प्रायः पत्तोंको हानि पहुँचाती है, परन्तु सामान्यतया आंधी शिशु-पौधोंको मार नहीं डालती। पौधे घासमें हो तो पाला बड़े पत्तोंके टुकड़े-टुकड़ेकर देता है।

उत्तरी भारतमें पौधेकी वृद्धि नवम्बर-दिसम्बरमें रुकती है और नई वृद्धि मार्चमें आरम्भ होती हैं। लगभग नवम्बर-दिसम्बरमें पत्ते पीले पड़ने लगते हैं और दिसम्बर-जनवरी में गिरना आरम्भ कर देते हैं। मार्च तक प्रायः सब गिर जाते हैं। उत्तरी भारतमें कुछ उदाहरणोंमें नवम्बरसे पत्ते गिरना आरम्भ होते हैं। इस मासके अन्त तक कई वृक्ष लगभग सर्वथा पत्र-विहीन हो जाते हैं जब कि दूसरे वृक्ष जनवरीके अन्त तक पूर्णतया पत्रयुक्त होते हैं। मार्चसे मई तक वृक्ष पत्र-विहीन रहता है और तब नये पत्ते निकलते हैं।

प्राकृतिक अवस्थाओंमें वर्षा-ऋतुमें अङ्कुरोत्पत्ति भिन्न-भिन्न समयोंमें होती है। वर्षा या दीमकोंसे या किसी दूसरी प्रक्रियासे यदि बीज पृथ्वीमें गड़ जाय तो सफल अङ्कुरोत्पत्ति-में बहुत सहायता मिलती है, अन्यथा कठोर छिलकेको फोड़ कर निकला हुआ कोमल अंकुर पक्षियों और कीड़ोंसे खा लिया जाता है या धूप लगनेसे सूख जाता है। अंकुरो-त्पत्तिमें नमी बहुत अधिक अंशमें आवश्यक सहायक होती है। यह देखा गया है कि छायाके नीचे आर्द्र स्थानोंमें अंकुरोत्पत्ति अधिक जल्दी होती है, विशेषकर तब जब कि

बीज ज़मीनमें गड़े हुए हों। धूपमें खुले स्थानोंमें देरमें अंकुरोत्पत्ति होती है।

बीजसे बोया गया एक वृक्ष सोलह सालमें उनतालीस फ़ीट ऊँचा और घेरेमें दो फ़ीट सवा इंच तक पहुँच गया था।

प्राकृतिक निवास-स्थानमें इसका अधिकतम छाया तापमान ९७° से ११५° फ़ारनहाइट तक और निम्नतम ३०° से ६०° फ़ारनहाइट तक भिन्न-भिन्न होता है। सामान्य वर्षाका माप ४० से १२० इंच या अधिक है।

उपयोगी भाग

फलका छिलका, फलका गूदा, बीजकी गिरी और फल उपयोगी होते हैं।

बाज़ारमें मिलने वाले बहेड़ेके फल प्रायः कीड़ोंसे खाये हुये होते हैं और इनमें पुराने फल भी बहुत होते हैं। पुराने फलोंका गूदा भूरा और फिर काला पड़ जाता है। इनके ऊपरका छिलका देखनेमें यद्यपि खराब नहीं मालूम होता परन्तु तोड़ने पर स्वस्थ देखने वाले छिलकेके नीचे वाले भूरे रंगका भुरभुरा गूदा निकलता है। ऐसे फल चिकित्सोपयोगके लिये ठीक नहीं होते।

कीड़ोंसे न खाये हुये, नये, आकारमें बड़े और रंगमें चमकीले हरिताभ-पीतवर्णके गूदे वाले फल औषधियोंमें डालनेके लिये उत्तम होते हैं।

संग्रह

नवम्बरसे फ़रवरी तक फल पकते हैं। पूर्ण पक्व होने पर फलोंको वृक्ष पर से उतार लें और सुखा कर ठंडे शुष्क स्थान पर रखें। बोरियोंमें भर कर या कनस्तरों और ड्रमों-में बन्द करके रखे जा सकते हैं।

मात्रा

फल त्वक्चूर्ण—बीससे तीस ग्रेन।

फलका गूदा—बीससे चालीस ग्रेन।

गुण*

संस्कृत निघण्टुकारोंने बहेड़ेके गुणोंके निदर्शक जो श्लोक लिखे हैं उनकी विवेचनासे मालूम होता है कि खांसी और

---

*विभीतकः कटुः पाके लघुर्वैस्वर्यजित् सरः।
कासाक्षिवक्त्ररोगघ्नः केशवृद्धिकरः परः॥
विभीतकं कषायं च कृमिवैस्वर्यजित्सरम्।
चक्षुष्यं कटुरूक्षोष्णं पाके स्वादु कफास्रजित्।

—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग।

विभीतकः कटुस्तिक्तः कषायोष्णः कफापहः
चक्षुष्यः पलितघ्नश्च विपाके मधुरो लघुः॥

—राजनिघण्टु, आम्रादि एकादश वर्ग।

विभीतकः स्वादु पाकः कषायः कफपित्तनुत्।
उष्णवीर्यो हिमस्पर्शो भेदनः कासनाशनः।

नेत्र-रोगोंको दूर करनेके लिए तथा बालोंके लिए उपयोगी रूपमें बहेड़ेकी उपयोगिता राजवल्लभको छोड़ कर सब लेखकोंने स्वीकार की है। राजवल्लभ भी इसका चक्षुष्य गुण तो स्वीकार करता है। मदनपाल और नरहरिने इसके

रूक्षो नेत्रहितः केश्यो मज्जातो मदकारकः।

—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग।

विभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत्।
उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदन कासनाशनम्॥
रूक्षं नेत्रहितं केश्यं कृमिवैस्वर्यनाशनम्।
विभीतमज्जातृट्छर्दिकफवातहरी लघुः॥
कषाया मदकृच्चाथ धात्रीमज्जापि तद्गुणा।

—भावप्रकाश निघण्टुः हरीतक्यादि वर्ग;

श्लोक ३५ से ३७ तक

विभीतं भेदि तीक्ष्णोष्णं वैस्वर्यं कृमिनाशनम्।
चक्षुष्यं स्वादुपाकञ्च कषायं कफपित्तनुत्॥

—राजवल्लभ

अक्षं कषायं मधुरं पाके पित्तकफापहम्।
उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं केश्यं वैस्वर्यं जन्तुजित्॥
चक्षुष्यं भेदनं रूक्षं लघु कासविनाशनम्।
अक्षमज्जा मदकरः कफमारुतनाशनः॥

—कैयदेव निघण्टु; औषधिवर्ग;

श्लोक २२५ से २२८ तक

कृमिनाशक गुणकी ओर संकेत नहीं किया। इन दोनोंके अतिरिक्त और सब लेखक बहेड़ेको स्वरयन्त्रमें लाभकारी समझते हैं। नरहरिने इसका अनुलोमक गुण भी नहीं लिखा। बहेड़ेके मदकारक गुणका उल्लेख भावमिश्र, मदन-पाल और कैयदेवने ही किया है।

रासायनिक विश्लेषण

फलोंमें दो भाग होते हैं—अन्तः और बाह्य। सौ भागों में बाह्य ७५'४ भाग और अन्तः २४'६ भाग होता है। अन्तः भागमें केवल १'२५ प्रतिशतक टैनिक ऐसिड होता है। बाह्य भागमें ६'७० प्रतिशतक गैलोटैनिक ऐसिड होता है।

छोटे क़िस्मके बहेड़ेके छिलके और गुठलीकी पृथक्-पृथक् परीक्षा करनेसे निम्न परिणाम प्राप्त हुए—

	छिलका	गुठली
आर्द्रता	८'००	११'३८
राख	४ २८	४'३८
पेट्रोलियम ईथर सत्व (एक्स्ट्रैक्ट)	'१२	२६'८१
ईथर सत्व (एक्स्ट्रैक्ट)	'४१	'४१
एल्कोहलिक सत्व (एक्स्ट्रैक्ट)	६'४२	'६१
जलीय सत्व (एक्स्ट्रैक्ट)	३८'५६	२५'२६

छिलकेके पेट्रोलियम ईथर-एक्स्ट्रैक्टमें एक हरासा पीला तेल था। इथीरियल एक्स्ट्रैक्टमें रञ्जक पदार्थ, रेजिन्स,

अम्ल, गैलिक एसिड और तेल थे, परन्तु क्षारीय तत्व कोई नहीं था। एल्कॉहलिक एक्स्ट्रैक्ट पीला, भंगुर, बहुत अधिक ग्राही और अंशतः गरम जलमें विलेय था। जलीय एक्स्ट्रैक्ट ने विभिन्न टैनिन प्रतिक्रियाएं दी।

गुठलीके पेट्रोलियम ईथर-एक्स्ट्रैक्टमें एक पीला पतला और फलकेसे स्वादका तेल था। यह तेल न सूखने वाला और एल्कॉहलमें अविलेय था। इथीरियल-एक्स्ट्रैक्ट भी तैलीय था। एल्कॉहलिक एक्स्ट्रैक्ट अंशतः गरम जलमें विलेय, स्वादरहित तथा प्रतिक्रियामें अम्ल था। जलीय सत्वमें शर्करा और सैपोनीन दोनों नहीं थे। कोई क्षारीय तत्व नहीं खोजा गया।

तेलका आपेक्षिक घनत्व ९१६८ से '९१९३ तक, पिघलाव विन्दु ४' से ° तक अम्लीय मान (Acid-value) २ ४ से ३ ६ तक साबुनीकरण मान (sopo-nification value) २०५'८ से २०५ ३ तक और आयोडीन मान (Iodine value) ७६'० से ८५ २ तक है।

बीजोंमें ३०-४४ प्रतिशतक तक तेल होता है। रखा रहने पर यह दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। एक पीले हरे रंगका द्रव और दूसरा गाढा सफ़ेद, घी सदृश घनताका अर्ध-ठोस होता है। तेल दवामें काम आता है।

सामान्य उपयोग

बन्दर, गिलहरी, सूअर, हिरण, बकरी, भेड़ें और दूसरे जानवर फलोंको बहुत चावसे खाते हैं और इसलिये मांसल आवरणसे युक्त फल कभी भी ज़मीन पर बहुत देर तक नहीं-पड़े रहते। शीत और ग्रीष्म ऋतुओंमें हलके पीलेसे रंगके बहेड़ेकी गुठलोंके छोटे-छोटे ढेर जंगलमें इधर-उधर पड़े हुये प्रायः मिल जाते हैं। ये गुठलियाँ हिरणोंसे चबा कर फेंकी गई होती हैं। शीत ऋतुमें पेड़ पर बहुतसी मुरझाई हुई शाखाएँ देखनेमें आती हैं जो फलोंकी प्राप्तिके लिये बन्दरों द्वारा तोड़ी गई होती हैं। पके हुये फलोंके लिये प्राणियोंका झुकाव बीजोंको दूर-दूर फैलानेमें सहायता पहुँचाता है। इसके अलावा फलोंकी फ़सलका एक बड़ा हिस्सा कीड़ों और जानवरोंसे काम आये बिना ऐसे ही पड़ा रह जाता है।

कांगड़ामें दुधारू गौओंके लिये पत्ते अच्छा चारा होते हैं।

फल भारतीय वैद्यक शास्त्रमें प्रसिद्ध त्रिफलाका एक अंश है। कपड़ेको रँगने और चमड़ेको कमाने तथा रँगनेमें काम आता है। इस दृष्टिसे यह हरड़से बहुत घटिया है। जावामें फलसे चमड़ा कमाया जाता है और थोड़ासा लोह गन्धित मिला कर चमड़ा काला रँगा जाता है।

भारत और जावामें फलसे देशी स्याही बनाई जाती है। इसके लिए ताज़े फल इस्तेमाल किये जाते हैं। फलके रसमें कसीस लोह गन्धित मिलानेसे लिखनेकी अच्छी स्याही तैयार हो जाती है।

गिरीमेंसे अल्प मात्रामें तेल निकलता है। यह बालों पर लगाया जाता है और औषधि-प्रयोगमें काम आता है।

बहेड़ेका रंग, कहते हैं, बहुत अच्छा नहीं आता। इसलिये जावामें सस्ते धागोंको रँगनेके काममें आता है।

भारतमें बहेड़ा रँगने और कमानेके लिए बहुत प्रयुक्त होता है। यह अकेला प्रयुक्त किया जा सकता है, तब यह कपड़े पर पीलासा या भूरासा पीला रंग देता है। अन्य रँगने वाले पदार्थोंके साथ मिला देनेसे गहरा भूरा या काला रंग देता है। अकेले बहेड़ेसे रँगनेकी विधि इस प्रकार है— प्रतिघन गज़ कपड़ेके लिए एक पाव बहेड़ा लें। गुठली निकाल कर फेंक दें और छिलकेको कूटकर बारीक कर लें। इसे एक सेर पानीमें डालें और साथ ही एक तोला अनार के छिलके डाल दें। रात भर पड़ा रहने दें। फिर उबालें और तीन उबाल आने पर उतार लें। ठण्डा होने पर मोटे कपड़ेमें छान लें। रँगे जाने वाले कपड़ेको अच्छी तरह धोकर सूखनेके लिये डाल दें। जब आधा सूख जाय तो एक तोला फिटकरी घुले हुए पानीमें भिगो लें फिर रंगके घोलमें

कपड़ेको डालकर हिलाते रहें जिससे सारे कपड़े पर एकसा रंग आ जाय। जब कपड़े पर रंग काफ़ी गहरा आ जाय तो धूपमें सुखा दें और बादमें पानीसे धो डालें जिससे रंगकी गन्ध निकल जाय। इस विधिसे muffy yellow रंग प्राप्त होता है।

मञ्जीठ आदिके साथ कपड़ा रंगनेमें हरड़के स्थान पर बहेड़ा भी इस्तेमाल होता है। कई स्थानों पर हरड़की तरह बहेड़ा चर्म-कर्ममें प्रयुक्त होता है। बीरभूमिमें पत्ते भी इसी तरह प्रयुक्त होते है। छाल भी काममें आती है पर इसमें ग्राहीगुण कम है। इसलिए रंगने वाले अन्य पौधोंकी छाल की अपेक्षा यह कम उपयोगी है।

वृक्षकी छालके क्षतोंमेंसे प्रचुर निर्यास निकलता है जो विशेष उपयोगी नहीं मालूम देता क्योंकि यह जलमें विलेय नहीं है। यह गोंद स्वाद-रहित होती है और देखनेमें कीकर के गोंदसे बहुत मिलती-जुलती है। कोल और मूर इसे खानेमें काम लाते हैं। मिदनापुरके जंगलोंमें यह बहुत होता है।

गोंद लगभग अँगुलीके बराबर मोटी और गोल लम्बोतरे खण्डोंमें छाल पर इकट्ठी हो जाती है। रंगमें घटिया कीकर की गोंदके रंगकी होती है। इसमें डम्बल (dumb-bell) सदृश कैल्शियम औक्ज़ेलेटके स्फटिक, स्फोरोक्रिस्टल्स और सूक्ष्म स्फटिक पदार्थोंके समूह होते है। पानी-

में भिगोनेसे फूल जाती है पर घुलती नहीं। दूसरी घुलन-शील गोंदोंके साथ मिलाकर इसे बेचा जाता है। आगमें जलानसे यह जल पडती है।

लकड़ी हलकी होती है और अच्छी नहीं समझी जाती। लेकिन आमतौर पर जितनी बुरी समझी जाती है उससे अच्छी ही होती है। कई स्थानों पर तो यह इतनी निकम्मी ख्यालकी जाती है कि वृक्षोंको सर्वथा काटा ही नहीं जाता। कई स्थानों पर इसे काट कर इमारती लकड़ीकी तरह इस्ते-माल करते हैं। एक प्रकारका कीड़ा लकड़ीमें छेद करके इसे हानि पहुँचाता है। लकड़ी बहुत टिकाऊ नहीं है और कीड़ोंसे भी शीघ्र आक्रान्त हो जाती है। ईंधनके लिए यह लकड़ी अच्छी है। जलाकर इसके कोयले भी बनाये जाते हैं। सावन्तवाड़ी ज़िलेके लोग चीनी साफ करनेमें इसकी लकडीकी राख व्यवहार करते हैं।

हरी लकड़ीका प्रति घन फुट भार अट्ठावनसे साठ पौण्ड और सूखीका उनतालीससे तैंतालीस पौण्ड होता है।

पानीमें भिगोनेके बाद लकड़ी तख़्ते बनाने, पैकिंग केस, कॉफी बक्स, नौकाएँ और उत्तर-पश्चिम प्रान्तोंमें गृह-निर्माणमें प्रयुक्त होती है। पानीमें डुबोनेसे यह अधिक टिकाऊ हो जाती है। मध्य प्रान्तमें यह हल और गाड़ियोंके बनानेमें इस्तेमाल होती है। दक्षिणीय भारतमें पैकिंग केस,

किश्तीके तख़्तों और अनाजके मापनेके पात्र आदिके बनानेमें काम लाई जाती है।

पथ-वृक्षके लिए यह अत्युत्तम वृक्ष है, परन्तु इसके साथ कई अन्धविश्वास जुड़े रहनेके कारण इसका उपयोग नहीं किया जाता। दक्षिणी भारतके हिन्दुओंका विश्वास है कि इसमें दैत्योंका निवास होता है। इसलिए वे इससे बचते हैं और इसकी छायामें कभी नहीं बैठते। मध्य और दक्षिणीय भारतके लोग लकड़ीको इस ख़्यालसे गृह-निर्माणमें उपयोग नहीं करते कि जिस घरमें इसकी लकड़ी होगी वह अनिष्टकर होता है और उसमें कोई व्यक्ति देर तक जीवित नहीं रह सकता। इसी अन्ध विश्वासके कारण अनेक स्थानों पर यह वृक्ष जंगलोंमें विना काटे हुए छोड़ दिया जाता है।

निर्यात

भारतमें जंगलोंमें बहेड़ेके फल बहुत इकट्ठे किये जाते हैं। जंगल-विभाग इसे नीलाम कर देता है। कार्तिकसे पौष तक इसका फल अच्छी तरह पक जाता है और तोड़ कर बाज़ारमें बिकने आ जाता है। मानभूमि, हज़ारीबाग आदि प्रदेशोंमें इसका मूल्य एक रुपया मन और चटगाँवमें पाँच रुपये मन होता है। हरड़का मूल्य इसकी अपेक्षा अधिक है। रँगने तथा चर्म-कर्मके लिए बहेड़ा भारतसे बाहर बहुत जाते हैं। नजीबाबाद और गढ़वालके

जंगलोंमें फल बहुत इकट्ठे किये जाते हैं और विदेश भेजे जाते हैं।

प्रभाव

कच्चा फल अनुलोमक होता है। पूर्ण पक्व फल भारी, बल्य और लघु होता है।

मुसलमान लेखक फलको भारी, बल्य, पाचक, लघु और सारक तथा आँखोंकी शोथयुक्त अवस्थाओंमें लेप रूपमें उपयोगी समझते हैं।

गोंद लेपक और रेचक विश्वास की जाती है।

लोगोंमें यह विश्वास बहुत अधिक प्रचलित है कि बहेड़ेकी गिरी विषैली होती है। कई लोग केवल बड़े फल-वाली किस्मको विषैला मानते हैं। दूसरे कहते हैं कि उन्होंने दोनों क़िस्मोंको बिना किसी प्रकारका विषैला प्रभाव अनुभव किये अच्छी तादादमें खाया है, परन्तु इन्हें खानेके बाद पानी पी लिया जाय तो शिरोभ्रम तथा नशाका अनुभव होने लगता है। सब-असिस्टेण्ट सर्जन श्रीयुत रैडक (Raddock) पाँचसे नौ सालके तीन लड़कों पर बहेड़ेके विष-प्रभावका उल्लेख करते हैं। बीज खाने पर उनमेंसे दो लड़के नशेमें चूर हो गये। दोनों सिर-दर्दकी शिकायत करते थे और उलटी कर रहे थे। तीसरा लड़का कमज़ोर था और इसने सबसे अधिक बीज खाये थे—बीस या तीस। इस लड़केमें दिनमें कुछ लक्षण प्रकट नहीं

हुए, परन्तु अगले दिन सुबह वह अचेत पाया गया और उसमें शिथिलताके सब लक्षण नज़र आते थे। वामक द्रव्य थोड़ी थोड़ी मात्रामें तेज़ माप देनेसे लक्षणोंमें कुछ कमी हुई। धीरे-धीरे वह होशमें आ गया परन्तु रहा, सिर घूमनेकी शिकायत करता था और अगले दिन तक उसकी नाड़ी तेज़ चलती रही। बादमें वह ठीक हो गया। श्रीयुत रैडकका विचार है कि यह लड़का एक हलके नशीले विषसे आक्रान्त था और इसका परिणाम भी घातक हो सकता था यदि स्टमक पम्पका प्रयोग न किया गया होता।

फलके विषैले प्रभावके सम्बन्धमें बहुत अधिक भिन्न और विरोधी सम्मतियाँ हैं। डिमक, वार्डन और हूपरकी परीक्षाओंके अनुसार इनमें कोई विषैला प्रभाव नहीं है। दूसरोंको खिला कर तथा स्वयं अधिक मात्रामें खाकर इन लोगोंने कोई बुरे प्रभाव नहीं देखे। बीजके विषैले प्रभावको जाननेके लिए छोटे जीवों पर भी परीक्षण किये गये हैं। एक बिल्लीके पेटमें गिरीका नौ ग्रेन एल्कोहलिक सत्व सूचिविद्ध किया गया। एक दूसरी भूखी बिल्लीके पेटमें १३.२ ग्रेन (लगभग पैंतीससे चालीस गिरियोंके बराबर) एल्कोहलिक सत्व डाला गया। दोनों अवस्थाओंमें परिणाम नकारात्मक थे। इसलिए इन लेखकों ने यह परिणाम निकाला कि गिरीमें कोई विषैला गुण नहीं है।

चिकित्सोपयोग

त्रिफलाके अङ्ग रूपमें यह लगभग प्रत्येक रोगमें विभिन्न प्रकारसे दिया जाता है। स्वतन्त्र रूपसे इसका प्रयोग बहुत अधिक नहीं होता।

पञ्जाबमें पका हुआ फल मुख्यतया रवयक्षु, अर्श, अतिसार, कुष्ठ और कभी-कभी ज्वरमें इस्तेमाल होता है।

मुख और श्वास-संस्थानके रोगोंमें बहेड़ा उपयोगी औषधि सिद्ध हुई है। आगमें डालकर भूने हुए फलको मुखमें रखकर धीरे-धीरे चूसते रहनेसे कण्ठ-व्रणमें लाभ होता है। बहेड़ा, अनारका छिलका, यवक्षार और पिप्पली समान भागमें मिला कर गुडके साथ गोली बना लें। गल-शोथ और कण्ठ-शोथमें यह गोली चूसनेके लिए दी जाती है। इसी प्रकार नमक और पिप्पलीके साथ फलके गूदेकी गोलियाँ बना ली जाती हैं। खाँसी, कण्ठ-व्रण, गलेका बैठ जाना आदिमें मुखमें रखकर इन्हें चूसनेसे आराम आ जाता है। सैंधव लवण, पिप्पली और बहेड़ेके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर चाटनेसे भी यही लाभ होता है। बहेड़ेके फलके ऊपर घी चुपड़ कर ऊपर घास लपेट दें और इसे गायके गोबरसे ढक कर आगमें पकाएँ। ऐसे एक बहेड़ेको मुखमें रख कर धीरे-धीरे चूसनेसे खाँसी दूर होती है*। आधेसे एक

* विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम्।

सोला बहेड़ेके चूर्णको मधुके साथ चाटनेसे खांसी, दमा और तीव्र हिचकी भी नष्ट होती है †। बहेड़ा, अतीस, पिप्पली, भारंगी और सोंठ सबका समान भाग सूक्ष्म चूर्ण बनाएँ। इस विभीतकादि चूर्णको गरम जल या मद्यके साथ सेवन करते रहनेसे खाँसी, दमा अपतानक अच्छे हो जाते हैं*। सब प्रकारके दमे और खाँसीमें अकेले बहेड़ेके प्रयोगसे भी लाभ होता देखा गया है †।

बहेड़े और असगन्धके समान भाग चूर्णमें गुड़ मिलाकर गरम जलसे खानेसे हृदयगत वायु नष्ट होती

स्विन्नमग्नौ हरेत् कास ध्रुवमास्य विधारितम् ॥

—चक्रदत्त; कास चिकित्सा; श्लोक २६।

† कर्षं कलिफलचूर्णं लीढञ्चात्यन्तमधुमिश्रम्।
अचिराद्धरति श्वासं प्रबलायुद्धंसिकाञ्चैव ॥

—चक्रदत्त; हिक्काश्वास चिकित्सा; श्लोक १८।

* विभीतकं सातिविषं भद्रमुस्तञ्च पिप्पली।
भार्गी श्रृङ्गवेरञ्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
चूर्णान्येतानि मद्येन पीतान्युष्णोदकेन वा।
नाशयन्ति नृणां शीघ्रं कासश्वासापतानकम् ॥

—बंगसेन संहिता; वातव्याध्यधिकार।

† सर्वेषु श्वास कासेषु केवलं विभीतकम्।

—अष्टाङ्ग हृदय; चिकित्सा स्थान; अध्याय ४;
श्लोक १६२।

है ‡ । मुनक्का, इलायचीका चूर्ण और बहेड़ेकी गिरीकी बनाई गई गोलियाँ वमनमें बहुत लाभकारी होती हैं । जलाये हुये बहेड़ेके फलके चूर्णमें नमक मिला कर खानेसे यह आँतोपर ग्राही प्रभाव करता है और इसलिए तीव्र अतिसारमें भी लाभदायक होता है ¶ । सुश्रुतने बहेड़ेको मूत्र रोगों में भी उपयोगी पाया है । वह लिखता है—बहेड़ेकी गिरीको मद्यमें पीस कर पिलानेसे मूत्राश्मरी दूर होती है और मूत्रके विकार हटते है * ।

ग्राही द्रव्यके रूपमें बहेड़ा आँखोंके रोगोंमें व्यवहार किया जाता है । इसके शीत कषायसे प्रातःकाल आँख धोने से आँखें निर्मल रहती हैं । आँख दुखने आने पर या नेत्र-शोथ पर पके हुए शुष्क फलका चूर्ण मधुमें मिलाकर आँखों पर लेप किया जाता है । बहेड़ेकी मींगी, काली मिर्च, आँवले

‡ पिबेदुष्णाम्भसा पिष्टं साश्वगन्ध विभीतकम् ।
गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृदयामेनिलनाशनम् ॥
—वङ्गसेनसंहिता; वातव्याध्यधिकार; श्लोक ६० ।

¶ विभीतकफलं दग्धं हन्याल्लवणसंयुतम् ।
महान्तमप्यतीसारं चक्रपाणीरिवाऽसुरान् ॥
—वङ्गसेन संहिता; अतिसाराधिकार; श्लोक ६२ ।

* अक्षबीजञ्च सुरया कल्कीकृत्य पिबेन्नरः ।
मूत्रदोष विशुद्ध्यर्थं तथैवाश्मरीनाशनम् ।
—सुश्रुत; उत्तर तन्त्र; अध्याय ५८; श्लोक ४४ ।

का गूदा, नीलाथोथा और मुलहठीको जलसे पीसकर वर्ति बनाएँ। इसे छायामें सुखाना चाहिए। तिमिरमें इस वर्तिको आँजना चाहिए †। बहेड़ेकी गिरीको स्त्री दुग्धमें घिसकर प्रतिदिन रातको आञ्जनेसे आँखके रोगोंमें लाभ होता है ‡।

विविध शोथयुक्त अवस्थाओंमें बहेड़ेका बाह्य प्रयोग लेप-रूपमें होता है। बहेड़ेको गिरीको पीस कर शोथ वाले भागों पर लेप किया जाता है बहेड़ेकी मींगीका तेल बाह्य प्रयोगमें आमवातमें वेदना वाले स्थानों पर मालिश कर-नेसे वेदना और शोथ दोनों शान्त होते हैं। सब प्रकार की शोथोंमें बहेड़ेके फलकी मज्जाके लेपसे दाह और और वेदना शान्त होती है*। ग्रन्थिविसर्पमें बहेड़ेके कल्कको गरम कर ग्रन्थि पर लेप किया जाता है †। नखे

---

† अक्षबीजमरिचामलकत्वक् तुत्थयष्टिमधुकैर्जलपिष्टैः।
छाययैव गुटिकाः परिशुष्का नाशयन्ति तिमिराण्यचिरेण॥
अष्टांग हृदय; उत्तर स्थान; अध्याय १३; श्लोक ४३।

‡ अक्षमज्जाञ्जनं साय स्तन्येन शुक्रनाशनम्॥
—भैषज्य रत्नावली, नेत्ररोगाधिकार; श्लोक ६७।

* विभीतकानां फलमध्यलेपः सर्वेषु दाहार्तिहरः प्रलेपः।
—चरक, चिकित्सितस्थान, अध्याय १२; श्लोक ६६।

† विभीतकस्य वा ग्रन्थिं कल्केनोष्णेन लेपयेत्।
—चरक, चिकित्सित स्थान; अध्याय २१; श्लोक ११४।

हुए स्थान पर बीजकी गिरी या फलका गूदा पीसकर लगानेसे दाह शान्त होता है।

बहेड़ेकी गिरीके निष्पीड़नसे प्राप्त तेल केश्य है। मध्य प्रान्तमें ग़रीब लोग इस तेलको घीके स्थान पर खाते हैं। वहाँ यह आठ आने सेर मिल जाता है।

बहेड़ा, वच, कुष्ठ, हरताल और मनःशिलासे पकाये तेलको बच्चोंके कान बहनेमें डालनेसे पूय आनो बन्द हो जातो है ‡।

कोंकणमें बहेड़ेकी गिरी ताम्बूलमें रख कर खाई जाती है।

साधु लोग कहते है कि रोज़ एक गिरी खानेसे विषय-वासना बढ़तो है।

वाग्भट्ट भी बहेड़ेको ग्रन्थि विसर्पमें लेप करता है

विजयाञ्जनागवलाग्निमन्थभूर्जग्रन्थिवंशपत्राणां वा।
—अष्टांग संग्रह; चिकित्सास्थान; अध्याय २०।

‡ विभीतकं वचा कुष्ठं हरितालं मनःशिला।
एभिस्तैलं विपक्वन्तु बालानां पूतिकर्णके।
—बङ्गसेन संहिता, बालरोगाधिकार; श्लोक १२।

सहायक ग्रन्थ

१—ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकोनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ इण्डिया; वाट (१८९३)।

२—ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकोनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ दि मलाया पेनिन्सुला; आर०एच० बुर्किल (१९३५)।

३—फ़ॉरेस्ट फ़्लोरा; डी० ब्रैण्डिस (१८७४)।

४—इण्डियन ट्रीज़; ब्रैण्डिस

५—ए मैनुअल ऑफ़ इण्डियन टिम्बर्स; गैम्बल (१९०२)।

६—सिल्विकल्चर ऑफ़ इण्डियन ट्रीज़, ट्रूप (१९२६)।

७—इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ़ इण्डिया; के० एल० दे० (१८९६)।

८—फ़ार्मकोपिया इण्डिका; कार्तिकचन्द्र बोस (१९३२)।

९—चरक; जयदेव विद्यालङ्कार (१९३२)।

१०—सुश्रुत, मोतीलाल बनारसीदास (१९३३)।

११—अष्टाग हृदय; निर्णय सागर (१९३३)।

१२—चक्रदत्त; शिवदास ।

१३—भैषज्य रत्नावली; जयदेव विद्यालङ्कार (१९३०)।

१४—बङ्गसेन संहिता; नवलकिशोर प्रेस (१९०४)।

१५—कैयदेव निघण्टु; मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास (१९२८)।

१६—भावप्रकाश निघंटु; नाथूराम मौद्गल्य।

१७—मदनविनोद निघंटु; त्र्यम्बक शास्त्री (१९७८)।

आंवला

नाम

संस्कृत*—उत्पत्ति बोधक नामः—आमलकी (अम-

---

*वयस्थाऽमलकं वृष्यं जातीफलरसं शिवम् ।
धात्रीफलं श्रीफलं च तथाऽमृतफलं स्मृतम् ॥
—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग ।

आमलकी वयस्था च श्रीफला धात्रिका तथा ।
अमृता च शिवा शान्ता शीताऽमृतफला तथा ॥
जातीफला च धात्रेयी ज्ञेया धात्रीफला तथा ।
वृष्या वृन्तफला चैव रोचनी च चतुर्दश ॥
—राज निघण्टु; आम्रादि एकादश वर्ग ।

वयस्थामलकी वृष्या जातीफलरसं शिवम् ॥
धात्रीफलं श्रीफलं च तथामृतफलं स्मृतम् ।
त्रिष्वामलकमाख्यातं धात्री तिष्यफलामृताम् ॥
—भावप्रकाश निघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग;
श्लोक ३७, ३८ ।

धात्रीफलाऽमृतफलाऽऽमलकं श्रीफलं शिवम् ।
—मदन विनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग;
श्लोक २६ ।

लात् कात् अश्रुजलात् आगतम्, भगवती और लक्ष्मीके ज़मीन पर गिरे हुए अश्रुजलोंसे उत्पन्न वृक्ष)।

परिचय ज्ञायक नाम:—श्रीफल (सुन्दर फल, अथवा जिसमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा फल); शोभनी (सुन्दर फल); कोल (बेरके समान गोल फल); जातीफला, जाती-रसफला (जायफल जैसी आकृतिके फल); शृङ्गी (सूखे फलकी फाँकें सींगके रंगकी और सींगकी तरह मुडी हुई होती है); वृन्तफला (बहुत छोटे वृन्तों पर फल लगते हैं); कोरङ्क, आमलकी (अम्ल रस युक्त); कामलक (कुछ खट्टा फल), सीधुरसा, सीधुफला (मद्य जैसा ईषद् अम्ल कषाय फल)।

गुण प्रकाशक नाम:—शिवा (कल्याणकारी); तिष्या,

श्रीफला पर्वकीटाख्या कोरङ्काऽऽमलको शिवा।
जातीरसफला सोधुरसा सीधुफला तथा॥
वयःस्था चामृतफला तिष्या तिष्यफलाऽमृत।
धात्री वृष्या वृष्यफला दिव्याधाराऽमृतोद्भवा॥
धात्रीफलं शीतफलं तिष्यरसफलं मतम्।
श्रीफलं चामृतफलं कोलं कामलं शिवम्।
शृङ्गी धात्री चामलकी शुक्तिः शुष्कामलवचापि॥
—कैयदेव निघण्टु; औषधि वर्ग;
श्लोक २२० से २२२ तक।

तिष्यफला, तिष्यरसफला (नित्यमामलके लक्ष्मीः' इति श्रवणात् तिष्यं मङ्गल्यं फलमस्याः) मङ्गलकारक फल); अमृता, अमृतोद्भवा, अमृतफल (अमृत रूप फल); दिव्या धारा (दिव्य आधार वाला, जिसके सेवनसे दिव्य गुण आते हों) वयःस्था (आयु स्थापक); वयस्या (आयुष्कारक फल); धात्रीफला, धात्रिका, धात्रेयी, धात्री (आयु धारण कराने वाले फल); आमलकी (आमलते 'मल' धारणे, शरीरमें धातुओंको धारण कराने वाला फल); वृष्या, वृष्यफला (इसके फलवृष्य होते हैं); शीता, शान्ता, शीतफला (पिपासा शान्त करने वाला शीत फल) ।

हिन्दी—आंवला आमला ।

बंगला - आमलकी ।

आसामी —आमलकी ।

तामिल नेल्लि ।

केनरी—नेल्लिकाय ।

मराठी—आवला ।

गुजराती —आम्बला ।

सिंहाली (लङ्का)— नेल्लि ।

वर्मा—शञ्जु ।

अरबी—आमलज ।

पर्शिया —आमला ।

अंग्रेज़ी—एम्ब्लिक माइरोबैलन (Emblic myrobalan)।

इण्डियन गूज़बेरी (Indian gooseberry)।

फ्रेंच—फ़ाइलेन्थे एम्ब्लिक (Phylanthe emblic)।

एम्ब्लिक ऑफ़िसिनल (Emblic officinal)।

जर्मनी—गिब्रौक्लिशर आमलाबौम (Gebrauchlicher amlabaum)

लैटिन—फ़ाइलेन्थस एम्ब्लिका (Phyllanthus emblica linn)

नैसर्गिक वर्ग—युफ़ोर्बिएसी (Euphorbiaceæ)।

प्राप्ति-स्थान

समस्त ऊष्ण भारतमें हिमालयके साथ-साथ जम्मूसे पूर्वकी ओर दक्षिणकी ओर और लङ्का तक सब जगह जङ्गलों में या बोया हुआ मिलता है। भारत और बर्माके बहुतसे भागोंमें सामयिक (deciduous) जंगलोमे प्रायः होता है। हिमालयमें, गढ़वाल और कुमायुँमें ४५०० फ़ीटकी ऊँचाई तक मिलता है। शुष्क प्रदेशोंमें और पजाबके उत्तर-पश्चिम भागोमें रावीके पश्चिमकी ओर नहीं मिलता।

बर्मा, लंका, चीन, मलाया प्रायद्वीपोंमें होता है। वहाँ अक्सर खेती भी की जाती है। दक्षिण-पूर्व एशियाके उष्ण प्रदेशोंमें और मलायासे तिमूर तक पाया जाता है।

वर्णन

एक छोटा या मध्यमाकार तीस-चालीस फ़ीट ऊँचा सामयिक (deciduous) वृक्ष है। तना छःसे नौ फ़ीट ऊँचा होता है। छाल चिकनी हरिताभ-धूसर या हलकी भूरी, पतली एक तिहाई इंचसे कुछ कम मोटी, छोटे अनियमित गोल छिलकोंमें उतरती हुई होती है। छालके अन्दरका भाग लाल होता है। छिलके उतरने पर नीचे पीले रंगकी नवीन छाल आ जाती है। लकड़ी लाल और कठोर होती है। काष्ठमज्जा (heart wood) नहीं होती। वार्षिक वृत्त स्पष्ट नहीं होते। छिद्र छोटे और मध्यम आकारके, एक सदृश फैले हुए, प्रायःकर अर्द्ध-विभक्त, माध्यमिक रेखाएँ (meddullary rays) चौड़ी और दो रेखाओंके बीचका अन्तर सामान्यतया छिद्रोंके लम्बअक्ष व्याससे अधिक बड़ा होता है। प्रतिघन फुट लकड़ीका भार ५२·५ से ४६ पौंड तक होता है।

पत्ते पंख सदृश समाकार (feathery oblong) हलके हरे, छोटी-छोटी शाखाओं पर पास-पास लगे हुए, आधा इंच लम्बे, किनारे मोटे, लगभग वृन्त-रहित होते हैं। लगभग नवम्बर या दिसम्बरमें पत्ते गिरना आरम्भ होते

हैं और फ़र्वरी या मार्चसे मार्च अप्रैल तक वृक्ष पत्र-रहित होता है। तब नये अंकुर प्रकट होते हैं।

पीताभ या हरिताभ-पीत सूक्ष्म पुष्प छोटी शाखाओं पर नये पत्तोंके अक्षोंमें घने गुच्छोंमें मार्चसे मई तक निकलते हैं और मधु-मक्खियोंके झुण्डोंसे व्यस्त रहते हैं। फूलोंमें नर अधिक और मादा कम होते हैं। दोनों जातिके फूल एक ही शाखाओं पर होते हैं। नर पुष्पोंका वृन्त छोटा और स्त्री पुष्प लगभग वृन्त-रहित होते हैं।

पत्ते और फूल धारण करने वाली छोटी सामयिक शाखाएँ अनियमित ग्रन्थिल (tubercular) उभारोंसे एक साथ तीन निकलती हैं। इनकी लम्बाई चारसे आठ इंच होती है। ये प्रायः रोमश होती हैं और पत्तोंके गिरनेके साथ गिर जाती हैं। इनकी आकृति संयुक्त पक्षाकार (compound pinnate) पत्तोंकी तरह होती है।

फल मांसल, गोल और ऊपर तथा नीचेसे चपटे होते हैं। फलोंका व्यास आधेसे पौन इंच, वर्ण पीताभ-हरित, छः लम्बाईके रुख रेखाओं वाले, चिकने, स्वादमें खट्टे ग्राही और तिक्त होते हैं। फलके अन्दर छः रेखाओं वाली अस्थिमयी गुठली होती है। गुठलीके अन्दर तीन कोष्ठ होते हैं जिनमें चार या छः गहरे भूरे चिकने त्रिकोण बीज पड़े होते हैं। १८०० या १६०० बीजोंका भार

एक औंस होता है। फल दिसम्बरसे फ़र्वरी तक या इससे भी अधिक देरमें पकते हैं। पकने पर फलका रंग लालिमा लिये हुए हरित पीत-सा हो जाता है। पके हुए फलोंको धूपमें रखनेसे गूदा सूख कर फट जाता है और अन्दरसे बीज बाहर निकल पड़ते हैं।

कृषि

देहरादूनकी परीक्षाएँ बताती हैं कि बीजोंकी उत्पादन शक्तिकी तुलनात्मक प्रतिशतकता कम है और बीज देर तक अपनी जीवनी शक्ति कायम नहीं रखते। एक साल तक रखे बीज उगनेमें सफल नहीं हो सके।

नर्सरीमें लगभग मार्चमें बीज बोये जाते हैं। पानी नियमित रूपसे देना चाहिए। पहले कुछ मास धूप और ज़ोरकी बारिशमें रक्षा करना चाहिए। निलाई नियमित होती रहे तो पहली बरसातमें पौधे इतने बड़े हो जाते हैं कि पृथक् करके नियत स्थान पर लगाए जा सकें। जड़ोंको नष्ट न होने देनेका पूरा ध्यान रखना चाहिए क्योंकि पुनरारोपणके लिए पौधे बहुत नाजुक होते हैं। सबसे अच्छा उपाय यह होता है कि बरसातके आरम्भमें बीजोको नियत स्थान पर बोया जाय और निराईका ध्यान रक्खा जाय। प्रथम बरसातमें ही अधिक घने उगे हुए पौधोंमेंसे कमजोर पौधोंको निकाल फेंकना चाहिये और

जहाँ पर बीचमें अधिक खाली स्थान छूट गया हो वहाँ स्टॉकमें रखे हुए नये मज़बूत पौधोंको लगा देना चाहिए।

उपयुक्त अवस्थाओंमें छोटे पौधोंकी वृद्धि शीघ्र होती है। पौधोंके बीचमें उग आने वाले विजातीय घास-पातको उखाड़ डालने पर और पानी न दिये जाने पर पौधोंकी प्रथम चार सालमें अधिकतम ऊँचाई इस प्रकार थी—

पहले साल—दो फ़ीट आठ इञ्च।

दूसरे साल—सात फ़ीट।

तीसरे साल—नौ फ़ीट सात इञ्च।

चौथे साल—सोलह फ़ीट छः इञ्च।

घास-पात निकालना वृद्धिमें बहुत सहायता करता है और घास-पातकी उपस्थिति वृद्धिको रोकती है। घास-पात न निकाले गये खेतोंमें पहले तीन सालोंमें अधिकतम वृद्धि इस प्रकार थी—

पहले साल—पाँच इञ्च।

दूसरे साल—तीन फ़ीट आठ इञ्च।

तीसरे साल—छः फ़ीट दस इञ्च।

छोटे पौधे छाया या किसी प्रकारके दबावको बर्दाश्त नहीं करते और जब कई छोटे पौधे एक साथ बोये गये हों तो एक या दो सबल पौधे तेज़ीसे बढ़कर अन्य पौधोंको दबा लेते हैं। पहले कुछ मासोंमें ये कुछ नाज़ुक होते हैं। आंधीका इन पर बहुत असर होता है और ज़ोरकी वर्षासे

इनके बह जाने या मारे जानेका भय रहता है। कीड़ों, चूहों और गिलहरियोंके हमलेकी भी उन्हें सम्भावना रहती है। छोटे पौधोंकी वृद्धि सन्तोषजनक शीघ्र होती है परन्तु बादमें यह कुछ मन्द हो जाती है।

प्राकृतिक अवस्थाओंमें शीत ऋतुमें और ग्रीष्म ऋतु के कुछ भागमें फल वृक्ष परसे गिरते हैं। ऊपरके मांसल आवरणके सूख जानेपर और अन्दरकी कठोर गुठली सहित फट जाने पर बीज बाहर निकल पड़ते हैं। हिरण फलोंको खा लेते हैं। जुगाली करते समय कठोर गुठली ज़मीन पर गिर पड़ती है और पड़ी-पड़ी सूखकर फट जाती है जिससे बीज ज़मीन पर बिखर पड़ते है। अङ्कुरोत्पत्ति वर्षा-ऋतुके आरम्भमें हो जाती है, परन्तु बहुत अधिक उदाहरणोंमें प्राकृतिक उत्पत्ति कम ही देखनेमें आती है। इसका कारण सम्भवतः कुछ तो यह हो कि बीजोंकी जननशक्ति बहुत उच्च नहीं है, परन्तु मुख्यतया शायद यह है कि प्रारम्भिक अवस्थाओंमें नवजात पौधे बहुत अधिक नाज़ुक होते हैं और कीड़ोंसे खाये जानेके सर्वथा योग्य होते हैं। प्राकृतिक अवस्थाओंमें पौधेकी वृद्धि सम्भवतः धीमी होती है।

पाले और तेज़ आँधी दोनोंका पौधे पर शीघ्र असर पड़ता है। तीव्र पालेमें फल सफ़ेदसे हो जाते हैं जैसे कि उबाले गये हों। भारतीय प्रायद्वीपमें १८६६-१९०० में आंवलेके पेड़ोंको आँधीसे असाधारण हानि हुई थी। इसी

तरह १९१३-१४ के शुष्क सालोंमें नुक्सान हुआ था अनेकों वृक्ष मारे गये थे, तनेसे नीचेकी ओर दरारें पड़ जाना एक व्यापी हानि थी। वृक्षकी पतली छाल धूपसे नाम मात्र ही रक्षा कर पाती है।

वृक्षके तनेको ज़मीनसे थोड़ा ऊँचेसे काट दिया जाय तो काटे हुए स्थानसे बहुतसी नवीन शाखाएँ निकल आती हैं। महीनेके अनुसार इन शाखाओंको संख्या कम या अधिक होती है। अप्रैलसे सितम्बर तक विभिन्न मासोंमें काटनेसे नवीन शाखाओंकी संख्या इस प्रकार थी -- अप्रैल ५०० मई ६५, जून ९०, जुलाई १०० अगस्त १०० और सितम्बर १०० । एक साल पुरानी नवीन शाखाएँकी औसत ऊँचाईका माप ७'४ फ़ीट था।

इतिहास

आमलकी वृक्षकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक पौराणिक गाथा प्रसिद्ध है—किसी पुण्य दिन भगवती और लक्ष्मी प्रभास तीर्थको गई थी। भगवतीने लक्ष्मीसे कहा--"देवी आज मैं स्वकल्पित किसी नवीन द्रव्यसे हरिकी पूजा करना चाहती हूँ।" लक्ष्मीने उत्तर दिया—"शिवको भी किसी नये पदार्थसे पूजनेकी हमारी इच्छा है।" फिर दोनोंकी आँखोंसे अमल अश्रुजल भूमि पर गिरा, उसीसे माघ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको आंवलेकी उत्पत्ति हुई। इस वृक्षको देखकर देवता और ऋषि आनन्दोल्लसित हो उठे।

तुलसी और बिल्वके समान ही यह पवित्र माना जाता है। इसके पत्तोंसे शिव और विष्णु दोनोंकी पूजा होती है। माघ मासकी एकादशीको इसकी उत्पत्ति होनेसे उसी दिन विष्णुदेव की इससे पूजा करनेसे देव प्रसन्न होते हैं।*

---

*कदाचित् देवयात्रायां प्रभासे पुण्यतीर्थके।
सर्वे देवाः समायाताः दिने पुण्येच कुत्रचित्॥
तत्राहञ्च स्वयं लक्ष्मीरेकस्थाने समागते।
तत्रावयोर्मतिर्जाता शिवविष्णुप्रपूजने॥
अहं श्रियमवोचञ्च सामुद्रि श्रृणु मे मतिम्।
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं हरिं प्रभुम्॥
मामुवाच ततो लक्ष्मीर्गद्गदा सरभाषिणी।
ममाप्येव मतिर्जाता त्वमवोचः स्वयं यथा।
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं त्रिलोचनम्॥
सजये विजये देवि! नावेवम्भूतयोस्तदा।
नयनेषु सुजातानि अमलाश्रुजलानि च।
तानि नौ नयनेभ्यश्च निपेतुर्भुवि हे सखि!॥
ततो जाता द्रुमाः पृथ्व्यां चत्वारो विमलप्रभाः॥
ख्याता आमलकी नाम्ना जाता कादमलाद् यतः।
श्यामलच्छद वृन्दास्ते कर्बूरस्कन्ध मूलकाः॥
शिराग्रथितपत्राली पत्रमालाक पत्रका।
बिल्वस्य च तुलस्याश्च ये गुणा कथिता सखि॥
ते ते गुणाः एव आमलक्यां समाहिताः।

देवताका प्रिय होनेसे हिन्दू लोग आँवलेके वृक्षको बहुत पवित्र मानते है । पत्र, पुष्पमालाएँ आदि चढ़ा कर इसकी पूजा करते हैं† । हिन्दुओंका विश्वास है कि आंवला सब पापोंको दूर कर देता है‡ । इसके पानीसे स्नान करनेसे स्वस्थ रहता हुआ मनुष्य सौ साल तक जीता है और लक्ष्मी-सम्पन्न रहता है¶ ।

बहुत दिनोंसे आंवलेने लोकोक्तिमें स्थान प्राप्तकर लिया है । संस्कृतके 'हस्तामलकवत्' मुहाविरेका हम दैनिक भाषामें बहुत प्रयोग देखते हैं । तुलसीदासने भी इस

पत्रमालादलैरस्याः शिवविष्णू सुरेश्वरौ ॥
सर्व्वथा पूजितौ स्यातां सरव्यौ नास्त्यत्र संशयः ।
माघे मासि सितायां तामेकादश्यां समुद्भवां ॥
शुभामलकी दृष्ट्वा समेताः सर्वदेवता ।
न्हाघस्ते सशिष्याश्च हर्षमापुः परं तदा ॥
गरुड पुराण, अध्याय २१५ ।

† नमाम्यालकी देवीं पत्रमालादालङ्कृताम् ।
शिवविष्णुप्रियां दिव्यां श्रीमती सुन्दरप्रभाम् ॥
गरुड पुराण, अध्याय २१५ ।

‡ धात्री हरति पातकम् ॥—स्कन्द पुराण ।

¶ श्री कायः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामालकैर्नरः ॥
गरुड पुराण, अध्याय २१५ ।

मुहाविरेका प्रयोग किया है—"जानहि तीनि काल निज-ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना" दूध भरे हुए गायोंके पयोधरोंकी तुलना माघने माघ मासमें फलोंसे लदे हुए आमलकी बनों से दी है§।

मलक्का नदी और नगरका नाम विश्वास किया जाता है कि संस्कृतके मूल शब्द 'आमलक' से निकला है। पश्चिमीय मलायेशियासे मदोएराके पूर्व तक यह नाम सामान्य रूपसे व्यवहृत होता है।

उपयोगी भाग

हरा और सूखा फल, बीज, पत्र, मूल, त्वक् और पुष्प।

सग्रह

फाल्गुन-चैत्रमें पूर्ण पक्व हो जाने पर वृक्ष परसे फलोंको तोड लें और अच्छी तरह सुखा कर शुष्क वायु-रहित कनस्तरोंमें रखें।

मात्रा

ताज़े फलका स्वरस— आधासे एक औंस।

सूखे फलका चूर्ण—चालीससे साठ ग्रेन।

रासायनिक विश्लेषण

यह सुविदित है कि फलोंके पकने पर उनमें टैनिक एसिडकी प्रतिशतकता घट जाती है। आंवला जब छोटा होता है तो पूरी तरहसे तिक्त होता है जब पक जाता है

---

§ पयोधरैरामलकी वनाश्रिताः ॥—माघ ॥

तो भक्ष्य हो जाता है और स्वादु लगता है। अपक्व आंवलेके शुष्क गूदेमें पैंतीस प्रतिशतक टैनिक एसिड होता है परन्तु पके हुए फलमें अत्यल्प परिमाणमें मिलता है। फलके गूदेमें गैलिक एसिड, निर्यास, शर्करा, एल्ब्युमिन, काष्ठोज (सेलुलोज़) और खनिज पदार्थ भी होते हैं।

भारत और स्याममें टैनिन देने वाला यह अच्छा वृक्ष है। टैनिन निकालनेके लिए फल, पत्ते और छाल सब समान रूपमें प्रयुक्त होते हैं। भारतमें किये गये विश्लेषणमें—गुठलीमें छः प्रतिशतक, फलके छिलकेमें छब्बीससे तीस प्रतिशतक, सम्पूर्ण फलमें उन्नीस प्रतिशतक, छोटी शाखाओंकी छालमें उन्नीससे चौबीस प्रतिशतक और पत्तोंमें २२·७ प्रतिशतक टैनिन था। जावामें विभिन्न स्रोतोंकी छालमें यह प्रतिशतकता १२.८ से २४ तक भिन्न-भिन्न थी।

गुठली रहित फलका गूदा १००° शतांश पर सुखाया गया है। इसका संघटन निम्नलिखित ज्ञात हुआ।

ईथर सत्व या एक्स्ट्रैक्ट (गैलिक एसिड आदि)	११,३२
एल्कॉहलिक सत्व (टैनिन, शर्करा आदि)	३६.१०
जलीय सत्व (गोंद आदि)	१३ ७५
सोडा सत्व (एल्ब्युमिन आदि)	१३.०८
अशुद्ध काष्ठोज (सेलुलोज़)	१७.८०
खनिज पदार्थ	४'१२
नमी और कमी	३.८३
	१००.००

टैनिन निकालनेके बाद फ्रेहलिंग से गूदेके कषायकी परीक्षामें दस प्रतिशतक ग्लूकोज़ पाया गया।

विश्लेषण करने पर बीजोंमें एक स्थिर तेल और गन्ध वाला रेज़िन पाया गया है। बीजोंमें कोई क्षारीय तत्व (alkaloid) नही प्राप्त हुआ।

पत्तोंमें अठारह प्रतिशतक टैनिक एसिड होता है और थोड़े परिमाणमें उड़नशील तेल या स्निग्ध पदार्थ होता है।

गुण

चरक हरड़ और आंवलेके गुण और प्रभावोंको एक जैसा ही समझना है परन्तु आंवलेका वीर्य इससे विपरीत है*। हरीतकी ऊष्ण वीर्य है और आमला शीत वीर्य। भावमिश्र और कैयदेव भी दोनोंको एक जैसा समझते हैं। भावमिश्र ने आंवले और उसकी गुठलीके गुण लिखे हैं—

हरीतकी समं धात्री फलं किन्तु विशेषतः।
रक्त पित्त प्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम्॥
यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम्।

---

* विद्यादामलके सर्वान् रसांल्लवणवर्जितान्॥
स्वेदमेदः कफोत्क्लेदपित्तरोगविनाशनम्।
—चरक; सूत्रस्थान; अध्याय २७;
श्लोक १४५, १४६।

तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानामपि निर्दिशेत् ॥

—भावप्रकाश निघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग

श्लोक ३९ और ४१ ।

कैयदेव लिखते हैं—

तद्वद्धात्री स्वेदमेदोहराऽम्ला शुक्रला हिमा ।
भग्नसन्धानकृत्केश्या पिपासा कफपित्तहृत् ।
तन्मज्जा तु तुवरः स्वादुस्तृट्छर्द्यनिलपित्तहा ॥

—कैयदेव निघण्टु, औषधि वर्ग; श्लोक २२३ ।

अन्य लेखकोंके शब्दोंमें आंवलेके गुण इस प्रकार हैं—

तद्वद्धात्रीफलं वृष्यं विशेषाद्रक्तपित्तजित् ॥
धात्र्यास्त्रिदोषहन्तृत्वं शक्त्यैव मुनिभिः स्मृतम् ।
सम्भावनादवशादुक्ता रसादेरपि हेतुता ॥

—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग

श्लोक २६ और ३० ।

कषायं कटु तिक्तोष्णं स्वादु चाऽऽमलकं हिमम् ।
रसं त्रिदोषहृद् वृष्यं ज्वरघ्नं च रसायनम् ॥

—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग ।

आमलकं कषायाम्लं मधुरं शिशिरं लघु ।
दाहपित्तवमी मेहशोफघ्नं च रसायनम् ॥
कटुमधुरकषायं किञ्चिदम्लं कफघ्नं ।
रुचिकरमतिशीतं हन्ति पित्तास्रतापम् ॥
श्रमवमनविबन्धाध्मानविष्टम्भदोष ।

प्रशमनममृताभं चाऽमलक्याः फलं स्यात् ॥

—राजनिघण्टु; आम्रादि एकादश वर्ग ।

लवण रसके अतिरिक्त सब रस आँवलेमें होते हैं। प्रत्येक रसके कारण इसमें अलग-अलग गुण होते हैं—

हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्यशैत्यतः ।
कफं रूक्षकषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥

—भावप्रकाश निघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग श्लोक ४०

अम्लत्वात्पवनं हन्ति पित्तम्माधुर्यशैत्यतः ।
कफं रूक्षकषायत्वात्तस्मात्किमधिकं फलम् ॥
कुर्यात्पित्तन्तदम्लत्वात्कफम्माधुर्य शैत्यतः ।
वातं रूक्षकषायत्वादेवं किन्न विपर्ययः ॥

—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग;
श्लोक २६ और २६ ।

योग

आमलकी तेल—आमलकी स्वरस चार सेर, तिल तेल एक सेर, मन्दाग्नि पर तेल सिद्ध करें। छारण-पत्र (filter paper) में छान कर मनोनुकूल गन्ध डाल दें। यह तेल प्रति दिन सिर पर लगाया जाता है। सिरके दाह और शूलको यह शान्त करता है।

आमलक्यावलेह*—आँवलेके १ मन ११ सेर १६ तोला

---

*रसममालकानान्तु संशुद्धं यन्त्र पीडितम् ।
द्रोणं पचेद्ध मृद्वग्नौ तत्र चेमानि दापयेत् ॥

स्वरसमें पाँच सेर खाण्ड डाल कर मन्दाग्नि पर पकाएँ। मैलको नितार कर फेंक दें और गाढ़ा होने पर आगसे उतार कर निम्न औषधियोके चूर्णको मिला दें—पिप्पली १ सेर ४८ तोला, मुलहठी १६ तोला, द्राक्षा १ सेर ४८ तोला, सोंठ १६ तोला और वंशलोचन १६ तोला। ठण्डा होने पर १ सेर ४८ तोला शहद मिला लें।

मात्रा—आधेसे एक तोला।

रोग—पाण्डु, कामला, पित्तरोग, शुक्रमेह आदि।

आमलकी खण्ड†—पचास तोला कूष्माण्ड (पेठे)

चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थ मधुकं द्विपलं तथा।
प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः किल पेषितम्॥
शृङ्गवेरपले द्वे तु तुगाक्षीर्याः पलद्वयम्।
तुलार्द्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत्॥
मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत् पलसम्मितम्।
हलीमकं कामलाञ्च पाण्डुत्वञ्चापकर्षति॥
—भैषज्य रत्नावली; पाण्डुरोगाधिकार;
श्लोक १०८ से १११ तक।

†स्विन्नं पीडितकूष्माण्डन्तुलार्धं भृष्टमाज्यतः।
प्रस्थार्द्धं तुल्य खण्डञ्च पचेदामलकीरसात्॥
प्रस्थे सुस्विन्न कूष्माण्डरसप्रस्थं विघट्टयन्।
दर्व्यापाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य निधापयेत्॥
द्वे द्वे पले कणाजाजी शुण्ठीनां मरिचस्य च।

को आठ तोले घी में भूनें। इसमें आमलकी स्वरस, कूष्माण्ड स्वरस और शर्करा पानक प्रत्येक सोलह तोले डाल पाक करें। पाक हो जाने पर निम्न औषधियोंका चूर्ण डाल दें। पिप्पली, जीरा, सोंठ, प्रत्येक दो तोला, काली-मिरच एक तोला, धनियाँ, तालीस पत्र, चतुर्जातक, मोथा, प्रत्येक चौथाई तोला। शीत हो जाने पर आठ तोला शहद मिला दें।

मात्रा— आधेसे एक तोला।

रोग—अम्लपित्त, पित्तजन्य उदरशूल, रक्तपित्त आदि।

धात्र्यरिष्ट*—दो हजार ताजे आँवलोंको कुएडी सोटेमें

पलं तालीसधान्याक चातुर्जातकमुस्तकम् ॥
कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च।
पक्तिशूलं निहन्त्येव दोषत्रय कृतञ्च यत् ॥
छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च कासश्वासावसेचकम्।
हृच्छूलं रक्तपित्तञ्च पृष्ठशूलञ्च नाशयेत् ॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञकम्।
—बंगसेन संहिता; परिणामशूल चिकित्सा,
श्लोक ८४ से ८८ तक।

*धात्रीफलसहस्त्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक्।
क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चूर्णार्द्धकुडवान्वितम् ॥
शर्करार्द्धं तुलोन्मिश्रं पक्वं स्निग्धघटे स्थितम्।

पीसकर रस निकालें। इसमें पिप्पली चूर्ण सोलह तोले और खाण्ड पाँच सेर मिलाकर पाक करें। खाण्ड घुल जाने पर उतार लें। ठण्डा होने पर आँवलेके रसमें अष्टमांश मधु मिला कर घीसे स्विन्न किये हुए घड़ेमें रख दें। उचित काल बाद अरिष्ट बन जाने पर छान कर प्रयोग करें।

मात्रा—सवासे ढाई तोला।

रोग—कामला, पाण्डु, हृद्रोग, कास, हिक्का आदि।

आमलाद्य लोह†—आमला, पिप्पली और मिश्री

प्रपिवेत् पाण्डुरोगार्त्तो जीर्णो हितमिनाशनः॥
कामलापाण्डुहृद्रोग वातासृग्विषमज्वरान्।
कासहिक्कारुचिश्वासानेषोऽरिष्टः प्रणाशयेत्॥
—भैषज्यरत्नावली; पाण्डुरोगाधिकार;
श्लोक ११२ से ११४ तक।
चरक संहिता; चिकित्सित स्थान; अध्याय १६;
श्लोक ११० से ११३ तक में यही धान्यरिष्ट पढ़ा गया है।

† आमलापिप्पलीचूर्णं तुल्यया सितया सह।
रक्तपित्तहरं लौहं योगराजमिदं स्मृतम्॥
वृष्यग्निदीपनं बल्यमम्लपित्तविनाशनम्।
पित्तोत्थानापि वातोत्थान् निहन्ति विविधान् गदान्॥
—रसेन्द्रसारसंग्रह, रक्तपित्त चिकित्सा।

प्रत्येक एक तोला, लोह भस्म तीन तोला; चूर्ण बनायें।

मात्रा—दो रत्ती।

रोग—रक्त पित्त, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, आदि।

धात्री लोह (१)*—आँवलेका चूर्ण चौंसठ तोला, लोह भस्म बत्तीस तोला; मुलहठीका चूर्ण सोलह तोला, सबको आँवलेके स्वरससे सात भावनाएं दें। सुखा कर शुष्क भाण्डमें बन्द करके रखें।

मात्रा—तीनसे छः रत्ती।

रोग—रक्तपित्त, अग्निमान्द्य।

अनुपान—घी और शहद।

धात्री लोह (२) †—बत्तीस तोले जौको एक सेर

---

*धात्री चूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्पुटे घृष्टम्॥
धात्र्याश्च क्वाथेन तच्चूर्णं भाव्यञ्च सप्ताहम्।
चण्डातपेन संशुष्कं भूयः पिष्टं घटे स्थितम्॥
घृतेन मधुना युक्तं भोजनाद्यन्तमध्यतः।
त्रीन्वारान्भक्षयेन्नित्यं पथ्यं दोषानुबन्धतः॥
भक्तस्यादौ नाशयेच्च दोषान्पित्तकृतानपि।
मध्ये चानाहविष्टम्भं तथान्ते चाग्निमन्द्यताम्।
रक्तपित्तसमुद्भूतान् रोगान्हन्ति न संशयः॥
—रसेन्द्र सार संग्रह; पित्तरोगाधिकार; श्लोक २ से ५ तक।

†कुडवं शुद्ध मण्डूरं यवञ्च कुडवन्तथा।

अड़तालीस तोले पानीमें चौंसठ तोला पानी शेष रहने तक पकाएँ। इस क्वाथमें मण्डूर भस्म बत्तीस तोला, शतावरी का स्वरस चौंसठ तोला, आँवलेका स्वरस चौंसठ तोला, दही बत्तीस तोला, दूध बत्तीस तोला, विदारी कन्द स्वरस बत्तीस तोला, गन्नेका रस बत्तीस तोला डालकर पकाएँ।

पाकार्थञ्च जलं प्रस्थं चतुर्भागावशेषितम् ॥
शतावरीरसस्याष्टावामलक्या रसस्य च।
तथा दधि पयो भूमि कूष्माण्डस्य चतुः पलम् ॥
चतुः पलमिक्षुरसं दद्यात्तत्र विचक्षणः।
प्रक्षिपेज्जीरकं धान्यं त्रिजातं करिपिप्पली ॥
मुस्तं हरीतकी चैव अभ्रं लौहं कटुत्रयम्।
रेणुका त्रिफला चैव तालीशं स्वर्णं केशरम् ॥
कटुकं मधुकं रास्ना चाश्वगन्धा च चन्दनम्।
एतेषां कार्षिकं भागं चूर्णयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥
भोजनाद्यवसाने च मध्ये चैव समाहितः।
तोलैकं भक्षयेन्नित्यमनुपानं पयस्तथा ॥
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥
परिणामसमुत्थञ्च अन्नद्रवभवं तथा।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम् ॥

—रसेन्द्र सार संग्रह; शूल रोग चिकित्सा, श्लोक १६ से २३ तक।

पाकशेष कालमें जीरा, धनियाँ, छोटी इलायची, तेजपात्र, दालचीनी, गज पिप्पली, मोथा, हरड़, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, सोंठ, मरिच, पिप्पली, रेणुका, हरड़, बहेड़ा, आँवला, तालीशपत्र, नागकेसर, कुटकी, मुलहठी, रास्ना, असगन्ध और लाल चन्दन प्रत्येकका चूर्ण मिलाएँ।

मात्रा—चारसे आठ रत्ती।

रोग—शूल, अम्लपित्त, आदि।

अनुपान—दूध।

धात्री षट्पलक घृत* —घी एक सेर अड़तालीस तोला आँवलेका स्वरस बारह सेर चौंसठ तोला; कल्कार्थ—पिप्पली पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक सोंठ, यवक्षार, प्रत्येक आठ तोला, पाकार्थ जल बारह सेर चौंसठ तोला। सिद्ध करके खाण्ड और सैन्धव मिला कर प्रयोग करें।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—गुल्म रोग।

आमलक घृत†—प्रशस्त भूमिमें उत्पन्न और अपने

---

* धात्रीफलानां स्वरसैः षडङ्गं पाचयेद् घृतम्।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम्॥
—भैषज्य रत्नावली, गुल्मरोगाधिकार; श्लोक ८४।

† आमलकानां भुमिजानां कालजानामनुपहतगन्ध-वर्णरसानामापूर्णरसप्रमाणवीर्याणांस्व रसेन पुनर्नवा कल्क-संप्रयुक्तेन सर्पिषः साधयेदाढकं, अत' परं विदारीस्वरसेन

स्वभाविक गन्ध, वर्ण और रससे युक्त आँवलेके स्वरस और पुनर्नवाके कल्कसे छः सेर बत्तीस तोले घीको यथा विधि सिद्ध करें। आँवलेका स्वरस २४ सेर १२८ तोले और पुनर्नवाका कल्क १$\frac{1}{2}$ सेर आठ तोले लेना चाहिए। सिद्ध होने पर घृतको छान लें। फिर इसी प्रकार आँवलेके स्वरस और पुनर्नवाके कल्कसे पकाएँ। फिर छान लें। इस प्रकार सौ बार पकाएँ फिर घीको छानकर विदारी कन्द स्वरस और जीवन्तीके कल्कसे पूर्वोक्त विधिसे सौ बार

जीवन्ती कल्क संप्रयुक्तेन, अतः परं चतुर्गुणेन पयसा बलातिबलाकषायेण शतावरी कल्कसप्रयुक्तेन, अनेन क्रमेणैकेकं शतपाक सहस्रपाकं वा शर्करा क्षौद्रचतुर्भागसंयुक्तं सौवर्णे राजते मार्तिके वा शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे स्थापयेत्। तद्यथोक्तेन विधिना यथाग्नि प्रातः प्रातः प्रयोजयेत्, जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषष्टिकमश्नीयात्; अस्य त्रिवर्षप्रयोगाद्वर्षशत वयोऽजरं तिष्ठति, श्रुतमवतिष्ठते, सर्वामयाः प्रशाम्यन्तिः, अप्रतिहतगतिः स्त्रीष्वपत्यवान् भवति॥

बृहच्छरीरं गिरिसारसारं स्थिरेन्द्रियं चातिबलेन्द्रियं च।
अधृष्यमन्यैरतिकान्तरूप प्रशस्तपूजासुखचित्तभाक् च॥
बलं महद्वर्णविशुद्धिरग्रया स्वरो घनौघस्तनितानुकारी।
भवत्यपत्यं विपुलं स्थिरं च समश्नतो योगमिमं नरस्य॥

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १ प्राणकामीय रसायन पाद, ४,५, और ६।

पकाएँ। इसमें भी प्रत्येक बार विदारी कन्द स्वरस २५ सेर ४८ तोले और जीवन्तीका कल्क १$\frac{1}{2}$ सेर २ तोले लेना चाहिए। तदनन्तर घीको छान कर पुनः घीसे चौगुने दूध बला और अतिबलाके क्वाथ और शतावरीके कल्क द्वारा पूर्वोक्त विधिसे सौ बार पकाएँ। प्रत्येक बार दूध २५ सेर ४२ तोले, बला और अतिबला भी इतना ही और शतावरी का कल्क १$\frac{1}{2}$ सेर २ तोले लेना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक प्रकारके पाकको एक हज़ार बार भी कर सकते हैं। घृत सिद्ध हो जाने पर उससे चतुर्थांश खाण्ड और मधु मिलाए। खाण्ड और मधुका मिलित प्रमाण १$\frac{1}{2}$ सेर २ तोले होने चाहिए जिसमें २ पाव ४ तोले शहद और इतनी ही खाण्ड होनी चाहिए।

इस प्रकार दो विधियासे पाक हुआ। सौ बार पके हुएको शतपाक और हज़ार बार सिद्धको सहस्रपाक कहते हैं। शतपाकको अपेक्षा सहस्रपाक अधिक गुणकारी होते है। यदि तीनों प्रकारसे क्रमशः एक-एक बार पाक किया जाय तो इसे 'एक पाक' कहते हैं। यह सबसे न्यून गुण होता है। शत पाक इससे अधिक और सहस्र पाक इससे भी अधिक गुणवान् होता है। खाण्ड और मधु मिला लेनेके बाद घृतको सोने चाँदी या घृतसे भावित दृढ मृत्पात्रमें रखें। कुटी प्रावेशिक विधिसे अग्निबलके अनुसार इस घृतका

प्रातःकाल सेवन करें। घी पच जाने पर दूध और घीसे शाली या सांठीके चावल खाएँ।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—इस घृतको तीन साल पर्यन्त नियमित सेवन करनेसे बुढ़ापा दूर होकर सौ साल आयु होती है। मस्तिष्क उद्बुद्ध होता है। स्मृति शक्ति बढ़ती है एक बार सुनी हुई बात भूलती नहीं। सब रोग दूर होते हैं। बल और पौरुष बढ़ता है। शरीर सुडौल और पर्वतके समान बलवान् होता है। रूप अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी होता है, शरीर स्वस्थ और चित्त प्रसन्न रहता है। वाणी गम्भीर और प्रभावशाली होती है। लैङ्गिक विकार दूर होते हैं। सेवन करने वाला स्त्री सहवासके योग्य होता है और उसकी सन्तानें बहुत पराक्रमी होती हैं।

आमलक चूर्ण रसायन*—६ सेर ३२ तोले आँवलेके

---

*आमलकचूर्णाढकमेकविंशतिरात्रमामलकसहस्र स्वरस परिपीतं मधुघृताढकाभ्यां द्वाभ्यामेकीकृतमष्ट भागपिप्पलीकं शर्कराचूर्णचतुर्भागसंप्रयुक्तं घृतभाजनस्थं प्रावृषि भस्मराशौ निदध्यात्, तद्वर्षान्ते सात्म्यपथ्याशी प्रयोजयेत्, अस्य प्रयोगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण॥

—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; प्राणकामीय रसायनपाद; ८।

चूर्णको एक हज़ार आँवलोंके स्वरससे इक्कीस वार भावना दें। इसमें शहद और घी प्रत्येक ११ सेर १३ छटांक, पिप्पली चूर्ण ६३ तोले, खाण्ड १½ सेर ८ तोले मिलाएँ और घीसे भावित मृत्पात्रमें रख छोड़ें। प्रावृट् ऋतुमें इसे राखके ढेरमें गाड़ दें। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर निकाल लें।

मात्रा—एकसे दो तोला।

रोग—ठीक सात्म्य भोजन करता हुआ मनुष्य इसे सेवन करे तो उसके पास बुढ़ापा नहीं आता और उसकी आयु सौ साल होती है। यह उत्कृष्ट रसायन है।

हरीतक्यादि योग†—दस सेर आँवलेके चूर्णको आँवलों

---

† हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिरावचाविडङ्गामृत-वल्लीविश्वभेषजमधुकपिप्पलीसोमवल्कसिद्धेन क्षीरसर्पिषा मधुशर्कराभ्यामपि च सन्नीयामलकस्वरसपरिपीतशतपल-परिमितमामलकचूर्णमयश्चूर्णचतुर्भागसंप्रयुक्तं पाणितल-मात्रं प्रातः प्रातः प्राश्य यथोक्तेन विधिना सायं मुद्गयूषेण पयसा वा ससर्पिष्कं शालिषष्टिकमश्नीयात्, त्रिवर्षप्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति, श्रुतमवतिष्ठते, सर्वामयाः प्रशाम्यन्ति, विषमविषीभवति गात्रे, गात्रमश्मवत् स्थिरी भवति, अदृश्यो भूतानां भवति।

यथाऽमराणाममृतं यथा भोगवतां सुधा।
तथाऽभवन्महर्षीणां रसायनविधिः पुरा॥

का रस पिला कर सुखाएँ और इसमें चतुर्थांश तीक्ष्ण लोहेकी भस्म मिलाएँ। इसमें हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, शालपर्णी, वच, वायविडङ्ग, गिलोय, सोंठ, मुलैठी, पिप्पली और सफ़ेद खैरके कल्कसे सिद्ध किये गये दूधसे निकाला घी तथा मधु और खाण्ड मिला कर इसे प्रातः कुटी-प्रावेशिक विधिसे सेवन करें।

मात्रा–तीनसे दस रत्ती। दिनमें इसे अनेक बार आवश्यकतानुसार दे सकते हैं।

रोग–तीन वर्ष तक इस रसायनके निरन्तर सेवनसे वृद्धावस्थासे उन्मुक्त हो कर सौ साल आयु होती है। सब रोग दूर हो जाते हैं। शरीरमें विषप्रभाव नहीं होता। शरीर पत्थरकी तरह कठोर होता है। कोई कृमि तथा अन्य जीव रसायन-सेवीके शरीर पर आक्रमण नहीं कर सकते अर्थात् उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि कृमि उसमें रोग उत्पन्न नहीं कर सकते।

पथ्य–औषध पच जाने पर सायंकाल मूंगकी दालके रसे या दूधके साथ खूब घी डाल कर शाली या सांठीके चावल खाएँ।

न जरां न दौर्बल्यं नातुर्यं निधनं न च।
जग्मुर्वर्षसहस्राणि रसायनपराः पुरा॥
—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १;
अभयामलकीय रसायनपाद; ७५, ७६, ७७।

च्यवनप्राश॰--विल्व, श्योनाक, अरणी, गम्भारी और

॰बिल्वाग्निमन्थौ स्योनाकः काश्मरी पाटलिर्बला ।
पर्ण्यश्चतस्त्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥
शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु ।
अभया चामृता ऋद्धि जीवकर्षभकौ शठी ॥
मुस्त पुनर्नवा मेदा एला चन्दनमुत्पलम् ।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥
एषां पलोन्मितान्भागान्शतान्यामलकस्य च ।
पञ्च तद्यात्तदेकत्र जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
ज्ञात्वा गतरसान्येनान्यौषधान्यथ तं रसम् ।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्वा चार्धतुलां भिषक् ।
मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥
षट्पलं मधुनाश्चापि सिद्धशीते समावपेत् ।
चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीद्विपलं तथा ॥
पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात् ।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥
कासश्वासहरश्चैव विशेषेणोपदिश्यते ।
क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानां चाङ्गवर्धनः ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चाप्यपकर्षति ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योपरुन्ध्यान्न भोजनम् ।

पाटलाकी जड़की छाल प्रत्येक आठ तोला, बलामूल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, पिप्पली, गोखरू, छोटी कण्टकारी, बड़ी कण्टकारी, काकड़ाश्रृंगी, भुई आँवला, मुनक्का, जीवन्ती, पुष्कर मूल, अगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलाइची, लाल चन्दन, नीलोत्पल, विदारीकन्द, बांसेकी जड़, काकोली और काकनासा प्रत्येक आठ तोला; आँवले

अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥
मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुः प्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटिप्रवेशात् ।
जराकृत रूपमपास्य सर्वं बिभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥
— चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; अभयामलकीय रसायनपाद; श्लोक ६० से ७२ तक। निम्न ग्रन्थोंमें भी च्यवनप्राशका पाठ है—
अष्टांग हृदय; उत्तर स्थान, रसायन अध्याय; अध्याय ३९; श्लोक ३३ से ४१ तक।
हारीत संहिता; तृतीय स्थान; अध्याय ९; क्षयरोगचिकित्सा; श्लोक ४६ से ६२ तक।
चक्रदत्त; यक्ष्मचिकित्सा, श्लोक ४६ से ५३ तक।

पाँच सौ (सवा छः सेर); इन्हें एक मन ग्यारह सेर सोलह तोले जलमें पकाएँ। आँवलोंको कपड़ेकी ढीली पोटलीमें बाँध कर डालना चाहिए। क्वाथ बन जाने पर आंवलेकी पोटली निकाल लें। क्वाथको वस्त्रपूत कर लें। अन्दरकी औषधियोंको फेंक दें। आंवलेमें से गुठली निकाल कर उन्हें हाथसे अच्छी तरह कुचल दें। कपड़ेमें छान कर रेशे फेंक दें। छनी हुई आंवलेकी पीठीको तिल तैल और घीके एक सेर सोलह तोले नमकमें भूनें। घी और तेल प्रत्येक अड़तालीस तोला लें। भुन जाने पर उतार कर अलग रख लें। छाने हुए क्वाथमें पाँच सेर खाण्ड घोलें और आग पर रख कर मैल निकाल दें। आँवलेकी नी हुई पीठीमें इस खाण्ड मिश्रित क्वाथको डाल कर आग पर चढाएँ। हलकी-हलकी आगसे पकाएँ। लेहकी तरह सिद्ध हो जाने पर उतार लें। भूनते और पकाते समय लकड़ीके खोंचेसे लगातार हिलाते रहना चाहिये जिससे पात्रके तलेमें औषध लगकर जल न जाँय। शीतल हो जाने पर अड़तालीस तोले शहद बत्तीस तोले वंशलोचन, सोलह तोले पिप्पली, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नागकेसर प्रत्येक दो तोला मिलाकर आलोडित कर लें।

चरक संहितामें पठित क्वाथ्य द्रव्योंकी संख्या और योगरत्नाकरोक्त संख्या एक समान ही है। परन्तु योगरत्नाकर में मुग्दपर्णी, माषपर्णी और काकनासा न पढ़ कर वृद्धि,

क्षीर काकोली और महामेदा ये अष्टवर्गोक्त द्रव्य विशेष पढ़े गये हैं ॐ। शार्ङ्गधर † ने क्वाथ्य द्रव्योंमें क्षीरककोली

ॐश्रृङ्गीतामलकोकयोत्पलबलापथ्याष्टवर्गामृता-
जीवन्तीत्रुटिचन्दनागुरूशठीद्राक्षाविदार्यम्बुदैः।
वर्षाभूदशमूलपुष्करवृषैः सार्द्धं पृथक् पालिकै-
रब्द्रोणेन शतानि पञ्च विपचेद्धात्रीफलानामतः॥
—योगरत्नाकर।

†पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः।
पर्ण्यौ बृहत्यौ पिप्पल्यः श्रृङ्गी द्राक्षामृताभयाः॥
बला भूम्यामलकी वासा ऋद्धिर्जीवन्तिका शठी।
जीवकर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा।
काकोल्यौ कमलं मेदे सूक्ष्मैलागुरुचन्दनम्॥
एकैकं पलसम्मानं स्थूलचूर्णितमौषधम्।
एकीकृत्य बृहत्पात्रे पञ्चामलशतानि च॥
पचेद् द्रोणजले क्षिप्त्वा ग्राह्यमष्टांशशोषितम्।
ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य वाससा॥
दृढहस्तेन सम्मर्द्य क्षिप्त्वा तत्र ततो घृतम्।
पलसप्तमितं तानि किञ्चिद्भृष्ट्वाल्पवन्हिना॥
ततस्तत्र क्षिपेत्क्वाथं खण्डं चार्धतुलोन्मितम्।
लेहवत्साधयित्वा च चूर्णानीमानि दापयेत्॥
पिप्पली द्विपला ज्ञेया तुगाक्षीरी चतुष्पला।

और महामेदा दो द्रव्य अधिक पढे हैं। इससे मिलित क्वाथ्य द्रव्योंकी मात्रा ३०४ तोला हो जाती है। चरकमें क्वाथ बन जानेकी पहिचान लिखी है जब औषधियोंका सारा रस क्वाथ में आ जाये। चक्रपाणिने 'गतरसानि' की टीका करते हुए चतुर्थांश बचा लेनेके लिए कहा है। अष्टांग हृदयमें भी पादशेष रससे चतुर्थांश बचानेका अभिप्राय है। शार्ङ्ग-धर संहितामें अष्टमांश बचानेका विधान है। इसके अतिरिक्त आँवलेकी पीठोको भूननेके लिए शार्ङ्गधरने तैलका पाठ नहीं किया और अड़तालीस तोला घीके स्थान पर छप्पन तोला घी लेनेके लिये कहा है। इसी प्रकार प्रक्षेपमें दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नागकेसरको पृथक्-पृथक् एक तोला लेनेके लिए कहा है जब कि चरक संहितामें इनकी मात्रा दो-दो तोला है।

मात्रा—एकसे दो तोला।

रोग—कास श्वास, स्वरभंग, छाती व फेफड़ेके रोग, हृद्रोग, वात रक्त और वीर्य दोषोंको दूर करता है। वृद्धोंके अंगोंको बल देता है और बालकोंके अवयवोंको बढाता है। इसके सेवनसे मेधा, स्मृति, कान्ति, दीर्घ आयु, निरोगता, इन्द्रियोंकी सबलता, देहाग्निकी दीप्ती, वर्णकी

प्रत्येकं च शिप्राणां स्यात् त्वगेलापत्रकेशरम् ॥
ततस्त्वेकीकृते तस्मिन् क्षिपेत् क्षौद्रं च षट्पलम् ॥
—शार्ङ्गधर संहिता;

निर्मलता आदि गुण पुरुषमें आते है। कुटी प्रावेशिक विधि से इसे प्रयोग करने वाला वृद्ध पुरुष भी बुढ़ापेके चिन्होंसे रहित होकर नव यौवनको प्राप्त करता है। अत्यन्त वृद्ध च्यवन ऋषि इसके सेवनसे जवान हो गया था इस लिए इसका नाम च्यवन प्राश रसायन रक्खा गया है।

ब्राह्म रसायन †—एक हजार (साढे बारह सेर) आंवलोंको दूधको ऊष्मामें स्विन्न करें। स्विन्न करनेकी विधि निम्न है—दूध भरी पतीलीके ऊपर एक हाण्डी रखें। इस हाण्डीके तलमें अनेक छोटे-छोटे छिद्र होने चाहिएँ। कपड मिट्टीसे सन्धि बन्धन करके हाण्डीमें आंवलोंको डाल दें। पतीलीके नीचे आग जलाएँ। दूधके वाष्प बन कर उठेंगे और वे आंवलोंको स्विन्न करेंगे। दूध इतना डालना

---

† यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रं पिष्टस्वेदनविधिना पयस ऊष्मणा सुस्विन्नमनातपशुष्कमनस्थि चूर्णयेत्, तदामलकसहस्रस्वरसपीत स्थिरापुनर्नवाजीवन्तीनागबलाब्रह्मसुवर्चलामण्डूकपर्णीशतावरीशंखपुष्पीपिप्पलीवचाविडङ्गस्वयंगुप्तामृताचन्दनागुरुमधुकमधूकपुष्पोत्पलपद्ममालती युवतीयूथिकाचूर्णाष्टभागसंयुक्तं पुनर्नागबलासहस्रपलस्वरसपरिपीतमनातपशुष्कं द्विगुणितसर्पिषा क्षौद्रसर्पिषा वा क्षुद्रगुडाकृतिंकृत्वा शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे भस्मराशेरधः स्थापयेदन्तर्भूमेः पक्षं कृतरक्षाविधानमथर्ववेदविदा, पक्षात्यये चोद्धृत्य कनकरजतताम्रप्रवालकालायसचूर्णाष्टभागसंयुक्तमर्धकर्षं वृद्ध्या

चाहिए कि उबालने पर ऊपरकी हाण्डीमें न चला जाय। तब भी उबाला आता मालूम दे तो पतीलीके बाह्य पृष्ठ पर ठण्डे पानीमें भीगा कपड़ा रख दे, उबाला शान्त हो जायगा। ऊपरकी हाण्डीके मुखको ढक्कनसे ढक देना चाहिए। स्विन्न हो जाने पर आंवलोंकी गुठली निकाल फेंकें और शेष भाग को छायामें सुखा लें। चूर्ण करे। आंवलेके इस चूर्णको एक हज़ार ताज़े आंवलोंका स्वरस पिलाएँ। रस डाल कर रख दें और रोज़ घोटते रहें। रस सूख जाने पर इसका अष्टमांश निम्न द्रव्योंका चूर्ण मिलाए—शालपर्णी, पुनर्नवा जीवन्ती, नागबला, ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, शतावरी, शङ्ख पुष्पी, पिप्पली, वच, वयविडङ्ग, कौञ्च बीज, गिलोय, लाल

यथोक्तेन विधिना प्रातः प्रातः प्रयुञ्जानोऽग्निबलमभिसमीक्ष्य जीर्णे च षष्टिकं पयसा ससर्पिष्कमुपसेवमानो यथोक्तान् गुणान् समुश्नत इति ॥

इदं रसायन ब्राह्मं महर्षिगणसेवितम्।
भवत्यरोगो दीर्घायुः प्रयुञ्जानो महाबलः॥
कान्तः प्रजानां सिद्धार्थश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः।
श्रुतं धारयते सत्त्वमार्षं चास्य प्रवर्तते॥
धरणीधरसारश्च वायुना समविक्रमः।
स भवत्यविषं चास्य गात्रे संपद्यते विषम्॥

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १; अभयामलक रसायनपाद; ५६ से ५९ तक।

चन्दन, अगर, मुलहठी, मदारके फूल, नीला कमल, श्वेत कमल, मालतीके फूल, गुलाबकी पंखुरियाँ और जूहीके फूल, । फिर इस चूर्णमें दो मन बीस सेर ताज़ी नागवलाका रस डाल कर छायामें सुखाएँ । सूख जाने पर फिर पीस लें । एक भाग मधु तथा दो भाग घी मिला कर राबके सदृश बना लें । घृत भावित स्वच्छ और दृढ घड़ेमें बन्द कर दें । भूमिमें गढ़ा खोद कर बारह या सोलह अंगुल उपलोंकी राख बिछा दें उस पर घड़ा रख दें । घड़ेके चारों ओर गढ़ेको उपलोंकी राखसे भर दें, घड़ेके मुखके ऊपर तथा चारों ओर बारह-बारह सोहल-सोलह अगुल राख आ जानी चाहिए । पन्द्रह दिन बाद घड़ेको निकाल कर उसमें सोना, चान्दी, प्रवाल, ताम्र और फौलादकी सम भागमें मिश्रित, भस्मोंको अष्टमांश डाल दें । औषधि सेवन करते समय भी इसी अनुपातसे भस्में मिलाई जा सकती हैं । इस रसायनको कुटी प्रावेशिक विधिसे सेवन करना चाहिए ।

आमलकावलेहः* —पूर्ण गुण युक्त एक हज़ार (साढे बारह सेर) आँवलोंको ढाककी ताज़ी गीली लकड़ीकी बनाई गई द्रोणीमें भर दें । द्रोणीका ढक्कन भी ढाककी लकड़ीका बना हो और मुख पर ठीक बैठ जाता हो कि वाष्प

---

* यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रमार्द्रपलाशद्रोण्यां सपिधानायां बाष्पमनुद्वमन्त्यामारण्यगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत्, तानि सुस्विन्नशीतान्युद्धृतकुलकान्यापोथ्याढकेन

बाहर न निकल सकें। आँवलोंसे भरी हुई बन्द द्रोणीको उपलोंकी आग पर रखें। द्रोणीकी गीली लकडी और आँवलेके जलीय भागके वाष्पसे आँवले स्विन्न हो जाँयगे। स्विन्न हो जाने पर आगसे उतार कर खोल लें और ठण्डा होने दें। ठण्डा हो जाने पर गुठली और रेशे निकाल फेंके। आंवलोंको कुचल कर कपडेमेंसे हथेलीसे मलकर छाननेसे रेशे पृथक् हो जाते हैं। छने हुए आंवलोंमें पिप्पली चूर्ण और छिलके रहित वायविडङ्ग प्रत्येक छह सेर बत्तीस तोले, खाण्ड नौ सेर अडतालीस तोले; तिल तेल, घी और शहद प्रत्येक बारह सेर चौंसठ तोले यथा विधि मिलाकर घीसे भावित पवित्र और मजबूत पात्रमें रखें। इक्कीस दिन पड़ा रहनेके बाद प्रयोग करें।

मात्रा--आधेसे एक तोला।

रोग—इसके नियमित सेवनसे बुढापा दूर होता है और आयु सौ साल होती है। यह उत्कृष्ट रसायन है।

पिप्पलीचूर्णानामढकेन च विडङ्गतण्डुलचूर्णानामध्यर्धेन चाढकेन शर्कराचूर्णानां द्वाभ्यां द्वाभ्यामाढकाभ्यां तैलस्य मधुनः सर्पिषश्च संयोज्य शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे स्थापये-देकविंशतिरात्रमत ऊर्ध्वं प्रयोगः; अस्य प्रयोगाद्वर्षशतमजर-मायुस्तिष्ठति।

—चरक, चिकित्सित स्थान; अध्याय १; प्राणकामीय रसायन पाद, १०।

आमलकायस ब्रह्म रसायन*---माघ व फाल्गुन मास में सर्वगुण युक्त आंवलोंको वृक्ष परसे अपने हाथसे तोड़ कर इकट्ठा कर लें। गुठलियां निकाल कर छायामें सुखा ले। इस शुष्क चूर्णको आँवलेके स्वरसकी इक्कीस भावना दें। प्रत्येक भावनाके बाद चूर्णको छायामें सुखाएं और पूर्णतया सूखजानेके बाद स्वरस डालना चाहिए। इक्कीस बार भावित यह चूर्ण छह सेर बत्तीस तोला लें। जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, सारिवा, राजक्षवक, बला, काकोली, क्षीर काकोली, श्वेतबला, पीतबला, वनकपास,

---

* करप्रचितानां यथोक्तगुणानामामलकानामुद्धृतास्थ्नां शुष्कचूर्णितानां पुनर्माघे फाल्गुने वा मासे त्रिःसप्तकृत्वः स्वरसपरिपीतानां पुनः शुष्कचूर्णीकृतानामढकमेकं ग्राहयेत्, अथ जीवनीयानां बृंहणीयानां स्तन्यजननां शुक्रवर्धनानां वयः स्थापनानां षड्विरेचनशताश्रितीयोक्तानामौषधगणानां चन्दनागुरुधवतिनिसखदिरशिंशपासनसाराणां चाणुशः क्षिप्तानामभयाविभीतकपिप्पलीवचाचव्यचित्रक विडङ्गानां च समस्तानामाढकमेकं दशगुणेनाम्भसा साधयेत्, तस्मिन्नाढकावशेषे रसे सूपूते तान्यामलकचूर्णानि दत्वा गोमयाग्निभिर्वंशविदलशरतेजनाग्निभिर्वा साधयेद्यावदपनयाद्रसस्य, तमनुपदग्धमुपहृत्यायसीषु पात्रीष्वास्तीर्य शोषयेत्, सुशुष्कंकृष्णाजिनस्योपरि दृषद् श्लक्ष्णपिष्टमयः

विदारीकन्द, विधारा, खस, शालि, साँठीके चावल, गन्ना, इक्षुवालिका, दाभ, कुश, सरकण्डा, गुन्द्रा, इल्कट (तृणभेद), जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मुग्दपर्णी, माष-पर्णी, मेदा, शतावरी, जटामांसी, कुलिंग, गिलोय, हरड़, आंवला, रास्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतावरी, मण्डूकपर्णी. शालपर्णी, पुनर्नवा और चन्दन, अगर, धव, आबनूस, खदिर, शीशम, असन, इनके मध्यकाष्ठों (Heart woods) के छोटे-छोटे टुकड़े और हरड़,

---

स्थाल्यां निधापयेत् सम्यक् तच्चूर्णमयश्चूर्णाष्टभागसंप्रयुक्तं मधुसर्पिर्भ्यामग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रयोजयेत् ।

एतद्रसायनं पूर्वं वसिष्ठः कश्यपोऽङ्गिरा' ।
जयदग्निर्भरद्वाजो भृगुरन्ये च तद्विधाः ॥
प्रयुज्य प्रयता मुक्ताः श्रमव्याधिजराभयात् ।
यावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महाबलाः ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण ध्यानेन प्रशमेन च ।
रसायन विधानेन कालयुक्तेन चायुषा ॥
स्थिता महर्षयः पूर्वं न हि किंचिद्रसायनम् ।
ग्राम्याणामन्यकार्याणां सिध्यत्यप्रयतात्मनाम् ॥
इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्रिकम् ।
जराव्याधि प्रशमनं बुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ।

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १, करप्रचितीय रसायन पाद, २ से ७ तक ।

बहेड़ा, पिप्पली, वचा, चव्य, चित्रक, वायविडङ्ग; ये सब द्रव्य मिलाकर छह सेर बत्तीस तोला लें। इन्हें एक मन चौबीस सेर जलमें सिद्ध करें। बारह सेर तेरह छटांक जल शेष रहने पर कपड़ेमें छान लें। इस क्वाथमें पहलेसे तैयार किया हुआ आँवलोंका उपर्युक्त चूर्ण डाल दें। इसको उपलोंकी आगसे या फाड़े हुए बाँसकी आगसे अथवा सरकण्डे व तेजबलकी अग्निसे धीरे-धीरे तब तक पकाएं जब तक क्वाथ सूख न जाय। बहुत तेज़ आग न दें अन्यथा औषधके जल जानेका भय रहता है। क्वाथ भाग उड़ जाने पर औषधको निकाल कर लोहेके पात्रमें फैलाकर सुखा लें। अच्छी प्रकार सूख जाने पर काले मृगके चर्म पर रखी सिल पर चूर्णको भली प्रकार बारीक पीस लें और लोहेके पात्रमें रख छोड़ें। प्रयोगके समय इस चूर्णका आठवाँ भाग लोह भस्म मिला लें।

मात्रा—चूर्ण सोलह रत्ती + लोह भस्म दो रत्ती।

रोग— यह रसायन बुढ़ापे और रोगके असरको दूर करता है। बुद्धिको कुशाग्र करता है। इन्द्रियोंको बल देता है। आयु दीर्घ करता है। इस रसायनको ब्रह्मा ऋषि ने बनाया था। वसिष्ठ, कश्यप, अंगिरा, जमदग्नि, भारद्वाज, भृगु और अन्य अनेक महर्षियोंने इस रसायनका सेवन किया था जिससे रोग और बुढ़ापेके कष्टोंसे मुक्त होकर वे सुखसे तप करते रहे थे।

अनुपान—मधु और घृत।

केवलामलक रसायन*—इस रसायनको सेवन करने वाला एक साल तक केवल दूध पर निर्वाह करता हुआ गौओंके बीचमें रहे और वहाँ जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी रहता हुआ मनमें गायत्री मन्त्रका ध्यान करता रहे। एक साल बाद पौष, माघ व फाल्गुन की किसी शुभ तिथिमें प्रयोग आरम्भ करे। प्रयोगसे पूर्व तीन दिन उपवास करे। फिर स्नान आदिसे शुद्ध होकर आंवलेके बनमें किसी

---

*संवत्सरं पयोवृत्तिर्गवां मध्ये वसेत्सदा।
सावित्री मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥
संवत्सरान्ते पौषीं माघी वा फाल्गुनीं तिथिम्।
त्र्यहोपवासी शुक्लश्च प्रविश्यामलकवनम्॥
बृहत्फलाढ्यमारुह्य द्रुमं शाखागतं फलम्।
गृहीत्वा पाणिना तिष्ठेतज्जपन् ब्रह्मामृतागमात्॥
तदा ह्यवश्यममृतं वसत्यामलके क्षणम्।
शर्करामधु कल्पानि स्नेहवन्ति मृदूनि च॥
भवन्त्यमृतसंयोगात्तानि यावन्ति भक्षयेत्।
जीवेद्वर्षसहस्राणि तावन्त्यगातयौवनः॥
सौहित्यमेषां गत्वा तु भवत्यमरसन्निभः।
स्वयं चास्योपतिष्ठन्ते श्रीर्वेदा वाक्च रूपिणी॥

—चरक, चिकित्सित स्थान; अध्याय १; करप्रचितीय रसायन पाद; श्लोक ८ से १३ तक।

बडे फल वाले आंवलेके वृक्ष पर चढ कर शाखामें लगे हुए फलको हाथसे पकड कर ओमूका जप करे। तब आँवलेको खाय। जितने आँवले खायगा उतने ही हजार साल युवा होकर जीवित रहेगा। यदि भर पेट खाकर तृप्त हो जाय तो अमर सदृश ही हो जाता है अर्थात् उस की आयु बहुत दीर्घ हो जाती है और कान्ति, लक्ष्मी, वेद और सरस्वती स्वयं उस मनुष्यके पास उपस्थित हो जाती हैं।

सामान्य उपयोग

जंगलोंमें आँवलेके वृक्षोंको काटकर लकड़ी ले ली जाती है। जड़से इसकी फिर नई शाखाएं निकल आती हैं, बड़ा होने पर उन्हें फिर काट लिया जाता है। इस प्रकार ईंधन के लिए इसमेंसे पर्याप्त लकड़ी निकल आती है लकड़ीकी बल्लियाँ अच्छी बनती हैं। कृषिके औज़ारों और फ़र्निचर बनानेके लिए उपयोगी है। यह घटिया इमारती लकडी है। सुखाते हुए मुड़ जाती है और दरारें पड जाती है। पानीमें यह टिकाऊ होती है इसलिए कुएं सम्बन्धी प्रयोजनमें काम लाई जा सकती है। लकड़ीकी छोटी कतरनें और छोटी शाखाएं गदले पानीमें डालनेसे पानी साफ़ हो जाता है इसलिए कूपवृत्तोंको बनानेमें इसका उपयोग बहुत किया जाता है।

टेनिनके उत्पादनके लिए वृक्षका विशेष महत्व कहा

जाता है, परन्तु लकड़ीकी दृष्टिसे यह निश्चित रूपसे कम मांग वाला वृक्ष है। रंगने और कमानेके लिए छालकी मांग बढ सकती है। वृक्षसे अधिक लाभ होनेकी विधि यह है कि कुछ बड़ा होने पर वृक्षको काट दिया जाय। फिर जड़से नयी शाखाएं निकलेंगी उनसे छाल और ईंधन दोनों प्राप्त किये जा सकते हैं।

फल, पत्ते और छाल सबमें टेनिन होनेसे भारतके विभिन्न भागोंमें चर्म कर्मके लिए प्रायः हरड़ आदि किसी पक्के टेनिन पदार्थके साथ मिलाकर प्रयुक्त होते हैं। बगालके चमार पत्तोंको कमानेके लिए बहुत अच्छा समझते हैं। त्रावन्कोरमें छाल चर्म-कर्ममें काम आती है। भारतमें किये गये वैज्ञानिक परीक्षणोंके अनुसार उत्तम चमड़ा प्राप्त करनेके लिए निम्न मिश्रण चर्म-कर्ममें अच्छा रहता है। आमलेकी छोटी शाखाओंकी छाल पचास प्रतिशतक, ककरौंदेकी तीस प्रतिशत और धौरा या बाकली (Anogeissus latifolia, Wal' = एनोजीसस लैटिफोलिया) को बीस प्रतिशतक। इस मिश्रणसे रंगा हुआ चमड़ा लालिमा लिए हुए भूरा होता है।

कपड़ा रगनेमें भी आंवलेके विभिन्न भागोंका उपयोग होता है। फलोंसे प्राप्त रग काला-सा भूरा होता है। फल अकेला बहुत कम प्रयुक्त होता है। बहेड़े और हरड़की तरह काला रग प्राप्त करनेके लिए यह प्रायः लोहेके लवणोंके

साथ या अन्य वृक्षोंकी छालोंके साथ प्रयोगमें आता है। यह रंगको अधिक गूढ़ा कर देता है। टसर और मलबैरी पर इससे सुन्दर हलके भूरे रंग प्राप्त किये गये हैं। रुई-पर बहुत बढ़िया रंग नहीं देता। छाल और पत्ते भी इसी तरह प्रयुक्त होते हैं और वही रंग देते हैं। पत्तोंमें हलके मैले और भूरेसे पीले रंगके रञ्जक पदार्थ स्वल्प परिमाणमें होते हैं। ये पानीमें विलेय हैं। टसर, रेशम, मलबेरी और ऊन पर इस रंगकी हलकी परन्तु बहुत सुन्दर छायाएं आती हैं। पत्तोके प्रयोगसे रेशम पर सुन्दर भूरे रंगकी छायाएँ प्राप्त की जाती हैं और लोह लवणोंके साथ रङ्ग कालेमें बदल जाता है। हौंगकौंगमें चीनी लोग पत्तोंको रंगनेके लिए इस्तेमाल करते हैं। जावामें इनसे चटाइयाँ रंगी जाती हैं। शिव सागर ज़िलेमें हरड़, जामुन और अमरूद की छालके साथ आँवलेकी छाल मिलाकर काला रंग बनानेमें काम आती है।

मलायामें फल भोजनोंमें मसालेके रूपमें काम आता है। भारतकी तरह मलायामें भी इसका आचार और मुरब्बा डाला जाता है। डच ईस्ट इण्डीज़में भी यह इसी तरह प्रयुक्त होता है। मुरब्बा बनानेके लिए भारतमें बनारसी आँवलेने बहुत ख्याति प्राप्तकी है। यह आंवला कलमें बांधकर तैयार किया जाता है। सामान्य आंवलोंकी अपेक्षा आकारमें बनारसी आंवला लगभग तिगुना या चार गुना

बड़ा होता है। मुरब्बा बनानेके लिए ताज़े हरे फलोंको एक-दो दिन चूनेके पानीमें डुबो रखें फिर सादे जलमें उबालें। ज़रा-सा मृदु हो जाने पर काष्ठकी शलाकासे सछिद्र कर दुगनी या तिगुनी खाण्डकी चाशनीमें डालें। जब फल पानी छोड़ दें तो आग पर रख कर जल भाग उड़ा दें। आंवलोंके अन्दर अच्छी तरह चाशनी चली जाने पर मुरब्बा बन गया समझें।

सूखे फल मैल साफ करने वाले समझे जाते हैं और इसलिए साबुनके स्थान पर सिर धोनेके काम आते हैं। रातको पानीमें भिगो कर रख देते हैं। और अगले दिन इस पानीसे सिर धोते हैं। यह बालोंको मुलायम और लम्बा भी करता है, ऐसा विश्वास प्रचलित है।

कहते हैं कुछ पशु फलोंको चावसे खाते हैं और पत्ते अच्छा चारा समझे जाते हैं।

वृक्षमेंसे एक गोंद निकलता है। यह उपयोगी नहीं होती।

प्रभाव तथा चिकित्सोपयोग

हिन्दु चिकित्साका आंवला एक महत्वपूर्ण पदार्थ है। प्राचीनतम लेखक चरक सुश्रुतसे लेकर आधुनिक लेखकों तकने इसे बहुत महत्व दिया है। अनेक योगोंमें यह महत्व-पूर्ण भाग लेता है और बहेड़े, और हरड़के साथ मिलाकर त्रिफला रूपमें यह प्रायः सब रोगोंमें विभिन्न रूपोंमें प्रयुक्त

किया जाता है।

ताज़ा फल तृषाशामक, मूत्रल और अनुलोमक होता है। शुष्क फल ग्राही और पाचक होता है। फूल शीतल और सारक होते हैं। छालमें पके फलकी ग्राहकता होती है।

मुसलमान हकीम इसे हिन्दु चिकित्सकोंकी तरह प्रयोग करते हैं। वे इसे ग्राही, तृषाशामक, हृद्य और शरीरके दोषों को शुद्ध करने वाला समझते हैं। शीतल और ग्राही गुणके कारण वे इसे बाह्य प्रयोगमें भी लाते हैं।

बहि तथा अन्त' प्रयोगमें शीत होनेसे आँवला पित्त को शान्त करता है। पित्तके प्रकोपसे हृत्कम्प और हृद् शूल हो तो आंमलकोके योग खिलाने चाहिए। पैत्तिक विकारोंमें आंवलेके मुरब्बेका उपयोग किया जाता है। प्रतिदिन प्रातः दूधसे लिया जाता है और भोजनमें भी खाया जाता है। रक्त प्रदर, रक्तार्शस्, नाशा रक्त स्राव, पूय मेह आदि पित्त प्रकोप जन्य रोगोंमें आंवलेके योग पित्त प्रकोपके शमनके लिए दिए जाते हैं।

आमलेका चूर्ण यकृत और अमाशयके लिए बहुत गुणकारी है। सूखे आंवलोंका चूर्ण लोहेके भस्मके साथ पाण्डु, कामला और अजीर्णके लिए उपयोगी औषध समझा जाता है। आंवलेका चूर्ण, लोह भस्म, सोंठ, मरिच, पिप्पली और हल्दीके चूर्णको एकत्र मिलाकर घी, शहद और खाण्डके साथ मिलाकर कामला तथा हलीमकमें देनेसे

बहुत लाभ होता देखा गया है* ।

महास्रोतस् पर आमलकीका शामक और रेचक प्रभाव होता है। आमाशयमें पित्त प्रकोपके कारण अम्लपित्त हो जाने पर प्रातःकाल आमलकी खण्ड दिया जाता है अथवा भोजनके पीछे आधा तोला आमलकी चूर्ण दिया जाता है† । अजीर्णमें आमलकीके अनेक योगोंका प्रयोग किया जाता है। क्षुधा उत्तेजक रूपमें आंवलेका मुरब्बा और आचार खाया जाता है। शुष्क फल अतिसार और प्रवाहिकामें ग्राही रूपसे बहुत दिया जाता है। ग्रहणी और अतिसारमें तीन माशा धात्री चूर्ण दिनमें तीन बार दिया जाता है। चिरस्थायी प्रवाहिकामें ताज़े आंवले खूब खाने चाहिए। ताज़े फलका रस अतिसार और प्रवाहिकामें ग्राही, लेपक और बल्य रूपमें एकसे तीन ड्रामकी मात्रामें दिनमें तीन चार बार पिलाया जाता है। एशियामें आंवलेको उदर कृमिहर रूपमें इस्तेमाल करते है। हस्ति चिकित्सक आमलकी वृक्षकी छाल-

---

*धात्रीलौहरजोव्योष निशाक्षौद्राज्यशर्कराः ।
भक्षयाञ्च विनिघ्नन्ति कामलाञ्च हलीमकम् ॥
—रसेन्द्रसार संग्रह, पाण्डु कामला चिकित्सा;
श्लोक २ ।

† भुक्तान्ते वारिणा पीतं चूर्णं धात्रीफलोद्भवम् ।
त्र्यहान्निहन्त्यम्लपित्तं कण्ठदाहसमायुतम् ॥
- भैषज्यरत्नावली, अम्लपित्ताधिकार; श्लोक १८ ।

को हाथीकी आमाशय सम्बन्धी सब शिकायतोंकी चिकित्सा समझते हैं।

श्वास संस्थानके लिये आंवला विशेष गुणकारी समझा जाता है। पुरातन कास और जुकाममें च्यवनप्राशका प्रयोग बहुत होता है। पुरातन कासमें च्यवनप्राश उत्तेजक क्रियाशील कफ निस्सारकका काम करता है और फेफड़ोंको शक्ति देता है। सरदियोंमें जुकाम और खाँसीकी प्रवृत्ति वाले लोगोंके लिये इसका सेवन बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे निर्बल बच्चोंको आधेसे एक तोला च्यवन प्राश प्रतिदिन प्रातःकाल गायके दूधसे सेवन कराया गया है और प्रत्येक उदाहरणमें आश्चर्य-जनक उन्नति देखी गई है। रेडियो माल्ट और विभिन्न ब्रैण्डोंके कौडलिवर औयल आदि यद्यपि आजकल शक्तिजनक औषधियोंके रूपमें बहुत अधिक प्रयुक्त हो रहे हैं परन्तु बालक जितनी सुगमतासे च्यवनप्राशको लेते हैं उतना दूसरी चीज़ोंको नहीं लेते। कौडलिवर औयल (मछलीका तेल) की अपेक्षा बच्चोंके लिए यह अधिक सात्म्य पडता है। अरुचिकर गन्ध और स्वादके कारण मछलीके तेलसे उत्पन्न होने वाले जी मचलाना आदि लक्षण च्यवनप्राशके सेवनमें नहीं उत्पन्न होते। क्षयकी प्रवृत्ति वाले मनुष्योंको प्रतिदिन च्यवनप्राश सेवनसे लाभ होता है। क्षयकी प्रारम्भिक अवस्थामें भी इसके उपयोगसे बहुत लाभ होता देखा गया है। कैल्शियम, लोह

लवण तथा अनेक शक्तिप्रद वानस्पतिक औषधियोंका मिश्रण होनेसे च्यवनप्राश सब अङ्गोंको पुष्टि देता है और इसका नियमित सेवन शरीरमें रोग प्रतिरोधक शक्ति पैदा करता है। पहले जो आमलकीके योग दिये गये हैं उन सबकी यह उपयोगिता है इसीलिए वे योग रसायन कहे जाते हैं।

आंवलेके स्वरसमें शहद और पिप्पली मिलाकर चाटनेसे हिचकी और वेदनानुगामी श्वासमें लाभ होता है। ताजा फल फेफड़ोंकी शोथमें सेवन कराया जाता है।

मलायामें पत्तोंका कषाय ज्वरमें देते हैं और शिरोवेदना या शिरोभ्रममें पत्तोंका कल्क माथे पर रखा जाता है। पिपासा शान्तिके लिए मूलका फाण्ट बना कर दिया जाता है। ज्वरोंमें पसीना लानेके लिए भी बीजोंका फाण्ट दिया जाता है। छोटा नागपुरमें आंवलेके कल्कको गरम करके खसरेकी फुन्सियों पर लेप करते हैं। विष विकारोंमें रोगीको दिये जाने वाले शाकके रसोंको स्वादु बनानेके लिए आँवलेका रस डालकर खट्टा कर लेते हैं*।

पित्त प्रकोपके कारण मुखमें छाले पड़ गए हों या मुख पाक हो तो मूलकी छालको घिस कर शहदसे लेप करनेसे लाभ होता है। पत्तोंके कषायसे गरारे करनेसे भी

---

*धात्री दाडिमम्लार्थे ....

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय २३; श्लोक २२५।

आराम आ जाता है । आंवलेमें विटामीन सी प्रचुर परिमाण में होती है इसलिए स्कर्वीमें यह बहुत उपयोगी होता है। जिन बच्चोंके दाँत कमज़ोर हों, ठीक तरह न निकलते हों, बहुत भंगुर हों या शीघ्र ही कीड़ोंसे खाये जाते हों उन्हें रोज़ ताज़े आंवले खाने चाहिये या इसके च्यवनप्राश आदि योग नियमसे सेवन करने चाहिए। आँवलोंको चबानेसे या दाँतों पर घिसनेसे दन्त रोगोंमें लाभ होता है* ।

लगभग दो ड्राम आंवलेका कल्क बना कर शहदके साथ प्रदरमें आते हुए खूनको रोकनेके लिए और गर्भाशयसे होते हुए रक्त स्रावको बन्द करनेके लिए दिया जाता है। श्वेत प्रदरमें शुष्क फलोंको शहद और खाण्डके साथ मिला कर देनेसे लाभ होता है। ताज़े फलके रसको मिश्री या मधुके साथ सेवन करनेसे योनि दाह शान्त होती है। धात्री चूर्णको जलमें मिलाकर लेप करना वस्तिशूल, योनि शूल मूत्र निग्रह और दाहको दूर करता है। आंवलेके क्वाथमें खाण्ड मिलाकर पित्त गुल्ममें सेवन करना चाहिए† ।

---

*धात्रीफलेन सघृष्टं दन्त रोग निवारणम् ।

—हारीत संहिता; तृतीय स्थान; अध्याय ४६; दन्त-रोग चिकित्सा; श्लोक १२ ।

†धात्री क्वाथः सितायुक्तं शस्यते पित्तगुल्मिनाम् ।।

—भैषज्य रत्नावली; गुल्माधिकार; श्लोक १८ ।

मूत्र मार्गमें भी आंवला पित्त प्रकोप को शान्त करता है। शर्करा मिश्रित शुष्कफलचूर्ण रक्तपित्त, दाह, मदात्यय, मूत्रकृच्छ्रादि पैत्तिक रोगोंमें लाभकारी है। ताज़े फलोंका रस प्रायः मधुके साथ मिलाकर एकसे तीन ड्रामकी मात्रामें मू॰ल रूपमें दिया जाता है। आंवलेके कषायमें भी मधु और खाण्ड मिला देनेसे स्वादु शीतल पेय बन जाता है और मूत्रल होता है। कोंकणमें ताज़ो छालका रस शहद और हल्दीके साथ मिलाकर पूयमेहमें दिया जाता है। पूयमेहके रोगियोंके लिए ताज़े फल रोज़ खाना लाभदायक है। आधी छटांक सूखे आवले रातको अष्ट गुण जलमें भिगोकर प्रात.काल जल नितार लें। इसमें मधु डाल कर पीना, सुज़ाक मूत्रकृच्छ्र दाह और नकसीरको शीघ्र दूर करता है। यह पेय अच्छे मूत्रलका कार्य करता है और शीत होनेसे मूत्र मार्गकी दाह आदिको भी शान्त करता है। साफ़ किशमिश या मुनक्कोंको रात भर पानीमें भिगो दें। प्रातः काल किशमिशोंको पानीके अन्दर हाथसे कुचल दें। इसमें आंवलेका स्वरस और शहद मिलाकर पिएं। ताज़े आंवले न मिल सकें तो सूखे आंवलाका शीत कषाय बना लिया जा सकता है पूयमेहके रोगी इस उत्तम स्वादु और बल्य शर्बतको प्रतिदिन तीन बार एक-एक गिलास पी सकते हैं। मूत्रल होनेसे यह पेशाब खूब लाता है जिससे मूत्र प्रणालीका प्रक्षालन हो जाता है। आँवलेके स्वरसमें

मधु मिलाकर चिरकाल तक निरन्तर सेवनसे सब प्रकारके प्रमेह दूर हो जाते हैं*। मूत्राशयके क्षोभमें वस्ति प्रदेश पर फलोंके कल्कका बाह्य लेप उपयोगी होता है। कल्कमें नीलोत्पला, केसर और गुलाबकी पखुरियाँ भी मिलाई जा सकती है। मूत्रावरोधमें भो वस्ति प्रदेश पर इस लेपको करनेसे लाभ होता है।

मधु मिश्रित धात्री स्वरस मधुमेहमें लाभकारी होता है। मधुमेहोको पिपासा शान्तिके लिए ताज़े फलोंका चूसना उत्तम तृषाशामक है। बीजोंका फाण्ट भी मधुमेह में दिया जाता है। एक तोला आमलकी स्वरसको प्रतिदिन शहदके साथ चिरकाल तक सेवन करनेसे बहुमूत्रता नष्ट होती है†। बहेड़ेके साथ फलोंके कषायका अन्तः प्रयोग रक्तपादक अङ्गोके स्रावमें अत्युत्तम ग्राही है। मूत्ररक्तस्रावमें कषाय लाभदायक है।

सूखे आंवलेके कषायसे क्षत स्थानको धोनेसे खून

---

* आमलकस्य स्वरसं मधुना च विमिश्रितम्।
. . . . . सर्वमेहरोगनिवारणम्॥
—हारीत संहिता; तृतीय स्थान, प्रमेह चिकित्सा, अध्याय २८; श्लोक ४३।

† धात्रीफलस्य रसकं मधुना च पिबेत्सदा।
बहुमूत्रक्षयं कुर्यात् . . . . . ॥
—भैषज्य रत्नावली, शुक्रमेहाधिकार; श्लोक ८।

बहना बन्द हो जाता है। इसी की पट्टी कर दी जाय तो ज़ख़्म साफ़ होकर धीरे-धीरे ठीक हो जाता है। बड़ौदामें आँवलेका रस दुर्गन्धि व्रणों पर उत्तम लेप समझा जाता है। गौज़को रसमें भिगा कर व्रणों पर रखें और पट्टी बांध दें। आवश्यकतानुसार दिनमें दो बार या प्रतिदिन एक बार गौज़ बदल कर नई पट्टी बांधी जा सकती है।

नेत्रोंमेंसे रक्त संचयको हटानेके लिए आमलकी शीत-कषायसे नेत्र धोए जाते हैं। सूखे आंवलोंको रात भर पानीमें भीगा रहने दें। प्रातः छान कर इससे आंख धोएं। नेत्रा-भिष्यन्दमें इससे बहुत लाभ होता है। इस शीतकषायको ठण्डा या गरम जैसा आंखको सुखकर प्रतीत हो वैसा प्रयोग किया जा सकता है। आंवले के रसको आंखोंमें डालने से नूतन अभिष्यन्दमें लाभ होता है*। नेत्रपटलशोथ (Conjunctivitis) में पत्तोंके कल्कका बाह्य प्रयोग होता है। आंवलेके क्वाथसे आंखोंमें परिषेचन करनेसे आंखो के विकारोंमें लाभ होता है†। वृक्ष पर लगे हुए आंवलेको सुईसे चीरा देनेसे निकले हुए रसको आंखोंमें डालनेसे सम्पूर्ण

---

* धात्रीफलनिर्यासो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः।
—चक्रदत्त ने रोग चिकित्सा; श्लोक ५।

† क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तः सर्वं प्रकारं विनिहन्ति शुक्रम्॥
—भैषज्य रत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक ७१।

आंखोंके रोग दूर हो जाते हैं* ।

नासारक्तस्रावमें तथा शिरोऽभिघातके कारण सिरमें रक्तसंचय हो जाय तो आंवलेके कल्कका सिर पर लेप किया जाता है तथा आमलकी शीत कषायको नासिकामें पिचकारी दी जाती है ।

आंवलेका बाह्याभ्यन्तरिक प्रयोग मेध्य और केश्य है । आंवलेके जलसे सिर धोना बहुत गुणकारी है । गरमियोंमें सिरके रक्त संचयको हटानेके लिए आंवलेका तेल लगाया जाता है । मस्तिष्करक्तसञ्चारमें कुछ बाधा हो, सिर और नेत्रोंमें ज्वलन अनुभव होतो हो और सिर दर्दकी प्रवृत्ति, विचारोंमें गड़बड़ी, बाल गिरना आदिमें आंवलेका तेल सिर पर मलनेसे लाभ होता है । कुछ ही दिनोंमें ज्वलन शान्त हो जाती है, मस्तिष्कको विचारशक्ति ठीक होती है और बाल झड़ने बन्द हो जाते हैं ।

---

* तरुस्थविद्धमामलकरसः सर्वाक्षिरोगनुत् ।

—चक्रदत्त, नेत्ररोग चिकित्सा; श्लोक ३६ ।

सहायक पुस्तकें

(१) फ़ॉरेस्ट फ़्लोरा; डी ब्रैण्डिस (१८७४)।

(२) ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकॉनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ इण्डिया; वाट (१८९२)।

(३) इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया; के० एल० दे० (१८९६)।

(४) ए मैनुअल ऑफ़ इण्डियन ट्रीज़; गैम्बल (१९०२)।

(५) इण्डियन ट्रीज़; ब्रैण्डिस (१९०७)।

(६) दि सिल्विकल्चर ऑफ़ इण्डियन ट्रीज़; ट्रूप (१९२१)।

(७) फ़्लोरा सिमलेन्सिस; कॉलेट (१९२१)।

(८) इण्डियन मेडिसनल प्लाण्ट्स; वसु एण्ड कीर्तिकर (१९१६)।

(९) इण्डियन मैटीरिया मेडिका; के० एम० नादकरणी (१९२७)।

(१०) फ़ार्माकोपिया इण्डिका; कार्तिक चन्द्र बोस (१९३२)।

(११) ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकॉनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ दि मलाया पेनिन्सुला; आई० एच० बुर्किल (१९३५)।

(१२) चरक संहिता; जयदेव विद्यालंकार (१९३६)

(१३) सुश्रुत संहिता; मोती लाल बनारसीदास (१९३३)।

(१४) अष्टांग हृदय; निर्णयसागर मुद्रणालय (१९३३)।

(१५) हारीत संहिता; श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस।

(१६) बंगसेन संहिता; नवल किशोर प्रेस (१६०४)।

(१७) रसेन्द्रसार संग्रह; विद्याधर विद्यालङ्कार (१६३६)।

(१८) भैषज्य रत्नावली; जयदेव विद्यालंकार (१९३३)।

(१६) चक्रदत्त सदानन्द, (सम्वत् १६८८)।

(२०) शार्ङ्गधर संहिता; लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रेस (१६२८)।

(२१) कैयदेव निघण्टु; सुरेन्द्रमोहन।

(२२) भाव प्रकाश निघण्टु; श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस (सम्वत् १६७२)।

(२३) राजनिघण्टु; आनन्दाश्रम मुद्रणालय (१८६६)।

(२४) धन्वन्तरि निघण्टु; आनन्दाश्रम मुद्रणालय (१८६६)।

(२५) मदन विनोद निघण्टु; त्र्यम्बक शास्त्री।

आदि, आदि।

त्रिफला

त्रिफला आयुर्वेदका प्रसिद्ध द्रव्य है। आयुर्वेदमें हरड़, बहेड़े और आँवलेका प्रयोग सम्मिलित रूपमें त्रिफला नाम से अधिक हुआ है। इसलिये इसके तीनों अंगका पृथक्-पृथक् वर्णन करनेके बाद भी सम्मिलित त्रिफलाका पृथक् वर्णन किया जा रहा है।

नाम

तीनों फलोंका समूह होनेसे इसके संस्कृत* नाम त्रिफला, फलत्रिक, फलत्रय आदि हैं। व्यवहारमें त्रिफला नाम अधिक प्रसिद्ध है। अंग्रेज़ीमें त्रिफला का श्रीमाइरोबेलेन्स नाम भी फलोंके त्रिकको देख कर रक्खा गया है।

---

* त्रिफलैतत्त्रयेण स्याद्वरा श्रेष्ठा फलोत्तमा।

—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग॥

फलोत्तमा फलश्रेष्ठा च फलत्रयम्।

फल त्रिकं वरा ज्ञेया पथ्याधात्रीबिभीतकैः॥

—कैयदेव निघण्टु; औषधिवर्ग; श्लोक २२१।

हरीतक्याश्चामलक्याः बिभीतकस्य च फलम्।

त्रिफलेत्युच्यते वैद्यै .... ॥

—हरीतसंहिता; कल्पस्थान; द्वितीय अध्याय।

उपयोगी भाग तथा संग्रह

रसायनार्थं लिये जाने वाले हरड़, आंवला आदि फल हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होने चाहियें। श्रेष्ठ हिमालय पहाड़ औषधियोंकी उत्कृष्ट भूमि है। इसलिये अपनी ऋतुओंमें उत्पन्न हुए फलोंको हिमालयसे ही समय-समय पर यथाविधि ग्रहण करें। फल, रस और बीर्यसे पूर्ण होने चाहियें, सूर्यकी धूप, जल, छाया और वायुसे तृप्त होने चाहियें। जले हुये सड़े हुये, चोट खाये हुये, और रोगाक्रान्त न हों।*

एक भाग हरड़, दो भाग बहेडा और तीन भाग आंवला मिलानेसे त्रिफला बन जाता है†। भावमिश्र

* औषधीनां परा भूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः।
तस्मात्कालानि तज्जानि ग्राहयेत्कालजानि तु॥
आपूर्णरसवीर्याणि काले काले यथाविधि।
आदित्यसलिलच्छायापवनप्रोणितानि च॥
यान्यजग्धान्यपूतानि निर्व्रणान्यगदानि च।
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; श्लोक ३६, ३७ और ३८।

† एकभागो हरीतक्या द्वौ भागौ च विभीतकम्।
आमलक्यास्त्रिभागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत्।
— हारीतसंहिता, कल्पस्थान; द्वितीय अध्याय।

कैयदेव ने हरड़, बहेडे, और आंवलेको संख्यामें क्रमशः एक, दो और चार लेनेके लिये लिखा है।

तीनो फलोंको सम भागमें लेनेके लिए लिखता है। तीनों फलोंकी गुठली रहित लेना चाहिए ‡।

गोविन्ददासने हरड़, बहेड़ा और आँवला तीनों मिले हुए फलोको महती त्रिफला नाम दिया है§। गम्भारी, द्राक्षा तथा फालसेके मिले हुए फलोंको ह्रस्व त्रिफला नाम दिया है। त्रिफला शब्दसे प्रायः सर्वत्र महती त्रिफलाका ही ग्रहण होता है।

गुण

त्रिफला कुष्ठमेहास्त्रकफपित्तविनाशिनी ॥

एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ।
चत्वार्यामलकानीति त्रिफला प्रोच्यते बुधैः ॥
—कैयदेवनिघण्टु, औषधिवर्ग श्लोक २२६ से २३१ तक।

†पथ्याविभीतकधात्रीणां फलैः स्यात्त्रिफला समैः।
फलत्रिकं च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥
—भावप्रकाशनिघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक ४२।

‡अतश्चामृतकल्पानि विद्यात्कर्मभिरीदृशैः।
हरीतकीनां शस्यानि भिषगामलकस्य च ॥
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; श्लोक ३५।

§पथ्या विभीतकं धात्री त्रिफला महती स्मृता।
ह्रस्वा कारमर्यमृद्वीकापरुषकफलानि च ॥
—भैषज्यरत्नावली; परिभाषाप्रकरण; श्लोक १५।

चक्षुष्या रोपणी हृद्या वयसः स्थापनी सरा ।

—मदनविनोदनिघण्टु, अभयादि प्रथम वर्ग ।

त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठहरा सरा ।

आयुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वरनाशिनी ॥

—भावप्रकाशनिघण्टु; हरीतक्यादिवर्ग; श्लोक ४३ ।

त्रिफला पित्तकफहृद्रसायनवरा सरा ।

रोपणी कुष्ठमेहास्रक्क्लेदमेदोविनाशनी ॥

चक्षुष्या दीपनी हृद्या विषमज्वरनाशनी ।

—कैयदेवनिघण्टु; औषधिवर्ग; श्लोक २३० ।

त्रिफला कफपित्तघ्नी महाकुष्ठविनाशिनी ।

आयुष्यादीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी ॥

वर्ण्यप्रदायिनी वृष्टा विषमज्वरनाशिनी ।

दृष्टिप्रदा कण्डुहरा वमिगुल्मार्शनाशिनी ॥

सर्वरोगप्रशमनी मेधास्मृतिकरी परा ।

—हारीतसंहिता; कल्पस्थान; द्वितीय अध्याय ।

योग

त्रिफलादि क्वाथ—त्रिफला, गिलोय, वासा किराततिक्ता, कटुकी, निम्ब; सब समान भागमें लेकर कषाय बनाएँ ।

मात्रा—एकसे चार औंस ।

रोग—कामला, पाण्डु, रक्तपित्त, अम्लपित्त, त्वक्‌-रोग, ज्वर, आदि ।

त्रिफलादि चूर्ण—त्रिफला चार तोला, मुलैठी दो तोला, लोहभस्म एक तोला, चूर्ण बनाएँ ।

मात्रा—चार से छह रत्ती ।

रोग—पाण्डु, कामला, अर्शस्, नेत्ररोग, पलित-रोग ।

अनुपान—मधु-घृत ।

अभयावटक*—हरड़ बारह तोले, त्रिफला, सोंठ, मिरच और पिप्पली प्रत्येक चार तोला, अजमोदा, चव्य-चित्रक, वायविडङ्ग, अम्लवेत, सेंधा नमक और वच प्रत्येक दो तोला, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची प्रत्येक तीन तोला; सबका सूक्ष्म चूर्ण करें। १२० तोला गुड़ मिलाकर एक-एक तोले की गोली बनाएँ ।

मात्रा—एक या दो गोली ।

रोग—प्लीहोदर, अर्श, गुल्म, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामला आदि ।

---

* अभयाफलत्रयाणां फलत्रयं त्रिकटुकात्पलमेकञ्च ।
दीप्यकचव्यकचित्रकविडङ्गवृक्षाम्लसिन्धुवचार्धपलैः ॥
त्वक्पत्रैलाकर्षैस्त्रिभिर्युक्तं सुचूर्णितं सूक्ष्मम् ।
त्रिंशद्गुडपलसहिता. कर्त्तव्यास्तरु संमितावटकाः ॥
अभयावटकानाम्ना प्लीहार्शोगुल्मजठरापहराः ।
पाण्ड्वामयकामलानां मन्दाग्नीनां सर्वदा शस्ताः ॥
—वङ्गसेनसंहिता; उदररोगाधिकार; श्लोक ५१-५३ ।

कंसहरीतकी*—दशमूल क्वाथ २ सेर ३२ तोला, हरड़ १००, गुड ५ सेर; अवलेह बनाएं। इसमें सोंठ, मिरच, पिप्पली, दालचीनी, इलायची और तेजपत्र प्रत्येक का एक तोला चूर्ण मिलाएं। शीतल होने पर ३२ तोला शहद और ज़रा-सा यवक्षार मिला दें।

मात्रा तथा सेवनविधि—एक हरड खाकर एक तोला लेह चाट लें।

रोग—शोथ, कास, ज्वर, पाण्डु, अम्लपित्त, यकृत्-प्लीहारोग।

दशमूल हरीतकी†—१९२ तोला दशमूल क्वाथमें सौ हरड़ पकाएं। गाढ़ा होने पर पाँच सेर गुड़ तथा सोंठ, मरिच

---

* द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसेऽभयानाञ्चशतं गुडाच्च।
लिहेत्सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च॥
प्रस्थार्धमात्रं मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावशूकात्।
एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम्॥
श्वासज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीहांस्त्रिदोषोदरपाण्डुरोगान्।
कार्श्यामवातावसृगम्लपित्तं वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान्॥
—वङ्गसेनसंहिता, शोफाधिकार; ११-१५।

† दशमूली कषायस्य कंसे पथ्याशतं युगत्।
तुलां पचेद्घने दद्यात् कोषक्षार चतुष्पलम्॥
त्रिजातकं सुचूर्णंशं प्रस्थार्धं मधुना लिहेत्।
दशमूली हरीतक्या शोथं घ्नन्ति सुदुस्तरम्॥

और पिप्पली सोलह तोला मिलाएं। शीतल होने पर दाल-चीनी, इलायची, तेजपत्र प्रत्येक का चूर्ण एक तोला और शहद बत्तीस तोला डालें।

मात्रा—एकसे दो तोला।

रोग—शोथ, उदर रोग, श्वास, पाण्डु आदि।

अभयावटी†—हरड, मिरच, पिप्पली, शुद्ध सुहागा प्रत्येक दो तोला, जमालगोटेके शुद्ध बीज चार तोला; डंडा थोहरके दूधमें घोट कर एक रत्ती की गोलियाँ बनाएं।

मात्रा तथा सेवनविधि—एक या आधी गोली एक हरड़के चूर्णके साथ गरम जल से लें। गरम जल से विरेचन होगा ठंडा पानी पीनेसे विरेचन बन्द हो जायेंगे।

रोग—जीर्ण ज्वर, पाण्डु, प्लीहा, रक्तपित्त, अम्लपित्त अजीर्ण आदि।

ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपाण्डूदरामयान्।
श्वासकार्श्यामवाताऽम्लपित्तं वन्हेश्च मन्दताम्॥
—वङ्गसेनसंहिता; शोथाधिकार; श्लोक १ ८, १९, २०।

†अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणश्च समांशकम्।
सर्वचूर्णसमञ्चैव दद्यात्कानकजं फलम्॥
स्नुहीक्षीरैर्वटी कार्या यथा स्विन्नकलायवत्।
वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा चोष्णाम्बुना पिबेत्॥
उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च।

त्रिफलादि क्षार*—हरड़, बहेड़ा, आँवला, अपराजिता, मध्य बिल्वगिरी, लोहभस्म, कटुकी, मोथा, कुष्ठ, पाठा, हींग, मुलैठी, मुष्कक्षार, यवक्षार, सोंठ कालीमिरच, पिप्पली, वच, वायविडङ्ग, पिप्पलीमूल, सर्जक्षार, नीमकी छाल, चित्रक, मूर्वामूल, अजवायन, इन्द्रजौ, गिलोय और देवदारु प्रत्येक १ तोला, सैन्धव, सौंचल, विड, औद्भिद और सामुद्र प्रत्येक नमक आठ तोला। इन्हें २ सेर ३२ तोला दही और १ सेर १६ तोले घी तथा इतने ही तेलमें मिलाकर मंदाग्नि पर अन्तर्धूम जलायें।

जीर्णज्वरं पाण्डुरोगं प्लीहाष्ठीलोदराग्नि च।
रक्तपित्ताम्लपित्तादि सर्वाजीर्णं विनाशयेत्॥
—रसेंद्रसारसंग्रह; गुल्मचिकित्सा, २२ से २४ तक

*त्रिफलां कटभी चव्यं बिल्वमध्यमयोरजः।
रोहिणीं कटुकां मुस्तं कुष्ठं पाठां च हिङ्गु च॥
मधुकं मुष्ककयवक्षारौ त्रिकटुकं वचाम्।
विडङ्गं पिप्पलीमूलं स्वर्जिकां निम्बचित्रकौ॥
मूर्वाजमोदेन्द्रयवान् गुडूचीं देवदारु च।
कार्षिकं लवणानां च पञ्चानां पलिकान्पृथक्।
भागान्दधि त्रिकुडवे घृततैलेन मूर्च्छितान्।
अन्तर्धूमं शनैर्दग्ध्वा तस्मात्पाणितलं पिबेत्॥
सर्पिषा कफवातार्शोग्रहणीपाण्डुरोगवान्।
प्लीहमूत्रग्रहश्वासहिक्का कासक्रिमिज्वरान्॥

मात्रा—एकसे दो माशे तक।

रोग—कफ वातज अर्श, ग्रहणी, पाण्डु रोग, प्लीहा, श्वास, कास, कृमि, अग्निमान्द्य आदि।

फलारिष्ट*—हरड़ और आँवले प्रत्येक १ सेर ४८ तोला, इन्द्रायण, कैथफलका गूदा, पाठा, चित्रकमूल प्रत्येक सोलह तोला के यवकुट चूर्णको २ मन २२ सेर ३२ तोले पानीमें पकाएँ। एक चौथाई पानी बच जाने पर उतार कर छान लें और दस सेर गुड़ घोल दें। घृतसिक्त घड़ेमें पन्द्रह दिन तक रखा रहनेके बाद छानकर प्रयोग करें। चरक ने यद्यपि धातकी पुष्पका पाठ नहीं किया पर ३२ तोला धायके फूल डाल देना चाहिये।

मात्रा—सवासे ढाई तोला तक।

शोषातिसारौ श्वयथुं प्रमेहानाहहृद्ग्रहान्।
हन्यात्सर्वविषं चैव क्षारोऽग्निजननो वरः॥
जीर्णे रसैर्वा मधुरैरश्नीयात्पयसाऽपि वा।
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १५; श्लोक १८८ से १९४ तक।

* हरीतकी फलप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च॥
विशालाया दधित्थस्य पाठाचित्रकमूलयोः।
द्वे द्वे पले समापोथ्य द्विद्रोणे साधयेदपाम्॥
पादावशेषे पूते च रसे तस्मिन् प्रदापयेत्।
गुडस्यैकां तुलां वैद्यस्तत्स्थाप्यं घृतभाजने॥

रोग—ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, पाण्डु, कामला, प्लीहा मलबन्ध, अग्निमान्द्य, कास, वातरोध आदि।

फलत्रिकाद्यरिष्ट *—त्रिफला, चित्रक, पिप्पली, अजवायन, लौहभस्म, वायविडङ्ग, प्रत्येकका चूर्ण ३२ तोला मधु १२८ तोला, जल १ मन ११ सेर १६ तोला और १० सेर पुराने गुड़को घृत भावित पात्रमें डालकर मुख बन्द करें और यवराशिमें रक्खें।

पक्षस्थितं पिबेदेनं ग्रहण्यर्शोविकारवान्।
हृत्पाण्डुरोगं प्लीहानं कामलां विषमज्वरम्॥
वर्चोमूत्रानिलकृतान्विबन्धानग्निमार्दवम्।
कासं गुल्ममुदावर्तं फलारिष्टो व्यपोहति॥
अग्निसन्दीपनो ह्येष कृष्णात्रेयेण भाषितः।
—चरक; चिकित्सितस्थान; अर्शचिकित्सा; अध्याय १४; श्लोक १४८ से १५३ तक।

* फलत्रिकं चित्रक पिप्पली च
सदीप्यकं लोहरजो विडङ्गम्।
चूर्णीकृतं कौडविकं द्विरंशं
क्षौद्रं पुराणस्य तुलां गुडस्य॥
मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं
यवेषु तानेव निहन्ति रोगान्॥
चरकसंहिता; चिकित्सित स्थान; श्वयथुचिकित्सा, अध्याय १२, श्लोक ४८।

मात्रा—एकसे ढाई तोला।

रोग—हृद्रोग, पाण्डुरोग, प्लीहा आदिके कारण होने वाली शोथ, गुल्म आदि।

अभयारिष्ट (१) †—हरड़ ६४ तोला, आँवले १२८ तोला, कैथकी मज्जा १ सेर, इन्द्रायण ½ सेर, वायविडङ्ग, पिप्पली, लोध, काली मिरच, एलवालुक प्रत्येक १६ तोला इन सबको ५ मन ४ सेर ६४ तोले जलमें पकाएँ। १ मन ११ सेर १६ तोले शेष रह जाने पर २० सेर गुड़

---

† हरीतकीनां प्रस्थार्धं प्रस्थमामलकस्य च ॥
स्यात्कपित्थाद्दशपलं ततोऽर्धा चेन्द्रवारुणी।
विडङ्गं पिप्पली लोध्रं मरिचं सैलवालुकम् ॥
द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत्।
द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते समावपेत् ॥
गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्पक्षं घृतभाजने।
पक्षादूर्ध्वं भवेत्पेया ततो मात्रा यथाबलम् ॥
अस्याभ्यासदरिष्टस्य नश्यन्ति गुदजा ध्रुवम्।
ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदरापहः ॥
कुष्ठशोफारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्धनः।
सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ॥
कृमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत्।
—चरक; चिकित्सितस्थान; अर्शचिकित्सा; अध्याय १४; श्लोक १३८ से १४४ तक।

घोल कर घृत स्निग्ध घड़ेमें बन्द कर दें। १५ दिन बन्द कर निकाल लें और छानकर बोतलोंमें भर दें।

मात्रा—सवासे ढाई तोला।

रोग—ग्रहणी, पाण्डु, तिल्ली, कृमि, अर्श, कृमि, ज्वर, राजयक्ष्मा आदि।

अभयारिष्ट (२) ‡—हरड़ १० सेर, मुनक्का ५ सेर,

वाग्भट इस अरिष्टमें १२८ तोला धातकीपुष्प भी डालनेका विधान करते हैं—

सलिलस्य वहे पक्त्वा प्रस्थार्धमभयात्वचम् ॥
प्रस्थं धात्र्या दशपलं कपित्थानां ततोऽर्धतः।
विशालां रोध्रमरिचकृष्णावेल्लैलवालुकम् ॥
द्विपलांशं पृथक्पादशेषे पूते गुडात्तुले।
दत्त्वा प्रस्थं च धातक्याः स्थापयेद् घृतभाजने ॥
पक्षात्स शीलितोऽरिष्टः करोत्यग्निं निहन्ति च।
गुदजग्रहणीपाण्डुकुष्ठोदरगरज्वरान् ॥
श्वयथुप्लीहहृद्रोगगुल्मयक्ष्मवमीकृमीन्।

—अष्टाङ्गहृदय; चिकित्सास्थान, अर्शचिकित्सा; अध्याय ८; श्लोक ६४ से ६८ तक।

‡ अभयायास्तुलामेकां मृद्वीकार्द्धतुलां तथा।
विडङ्गस्य दशपलं मधूककुसुमस्य च ॥
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत्।
शीतीभूते रसे तस्मिन् पूते गुडतुलां क्षिपेत् ॥

वायबिडंग १ सेर, और महुएके १ सेर फूलको ५ मन ४ सेर ६४ तोले पानीमें पका कर १ मन ११ सेर १६ तोले जल शेष रख लें। छान कर इसमें १० सेर गुड़ घोलें और निम्न प्रक्षेप द्रव्योंको मिला कर घड़ेमें बन्द कर दें। प्रक्षेप द्रव्य—गोखरू, निशोथ, धनियां, धायके फूल, इन्द्रायण, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तोमूल और मोचरस प्रत्येक १६ तोला। एक महीने बाद अरिष्ट तय्यार हो जाय तो छान कर रख लें।

मात्रा—एकसे दो तोला।

रोग—अर्श तथा अन्य उदर रोग, मलबन्ध, मूत्र-कृच्छ्र आदि।

महाभयारिष्ट *—हरड़ दो सौ पल, दशमूल, थोहर,

श्वदंष्ट्रां त्रिवृतां धान्यं धातकीमिन्द्रवारुणीम्।
चव्यं मधुरिकां शुण्ठीं दन्तीं मोचरसं तथा॥
पलयुग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृण्मये।
क्षिप्त्वा संरुध्य तत्पात्रं मासमात्रं निधापयेत्॥
ततो जातरसं ज्ञात्वा परिस्राव्य रसं नयेत्।
बलं कोष्ठञ्च वह्निञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत्॥
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं तथाष्टावुदराणि च।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नो वह्निं सन्दीपयेत् परम्॥
—चरक, जयदेव विद्यालङ्कार कृत टीका, पृष्ठ २४०८-२४०९।

*हरीतकीनां श्रेष्ठानां द्वे शते जर्जरीकृते॥

दन्तीमूल, करञ्जबीज मज्जा, नील (या काला दाना), असन (बीजासार), अपामार्ग, देवदारु, जलबेत्र, कुटज, अटजी, दारुहरिद्रा, बड़ी कटेली, रास्ना, श्योनाक, चित्रक, वरुण, मिलित ढाई सेर को ५ मन ८ सेर जल में पकाएं और १ मन ३१/४ सेर क्वाथ बचा लें। छान कर १० सेर गुड़ घोलें। घड़े में भर कर निम्नलिखित द्रव्यों के चूर्णका प्रक्षेप दें—काली मिरच, वार्यविडङ्ग, भारंगी, इन्द्रजौ ३२ तोला और पिप्पली १२८ तोला। १२८ तोला मधु भी मिला दें। अरिष्ट बन जाने पर प्रयोग करें।

मात्रा—एक से दो तोला।

रोग—कफज रोग, राजयक्ष्मा आदि।

दशमूलसुधादन्तीकरञ्जाघोगुडासनाः।
मयूरकं देवदारु निचुलं कुटजाटजी (?) ॥
कटङ्कटेरी बृहती रास्ना श्योनाकचित्रकौ।
वरुणं चेति संक्षुद्य पञ्चविंशतिकैः पलैः ॥
पचेद्द्रोणेऽपां पचेद्देतद्यावत् पञ्चाढकं स्थितम्।
तस्मिन् पूते गुडतुलां दत्त्वा भूयश्च साधयेत् ॥
परिवृत्तं समालक्ष्य घृतभाण्डे निधापयेत्।
मरिचानि विडङ्गानि भार्गी' शक्रयवांस्तथा ॥
आवपेत् कुडवांशानि पिप्पलीप्रस्थमेव च।
मधुप्रस्थं च संसृज्य मासादूर्ध्वं प्रयोजयेत् ॥
पथ्याशी मात्रया काले मुच्यते कफजैर्गदैः।

शिवा गुग्गुलु *—हरड़, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक ३२ तोलाको ६ सेर १२ तोला जलमें चौथाई पानी शेष रहने तक पकाएँ। वस्त्रपूत क्वाथमें एरण्ड तेल १६ तोला शुद्ध गन्धक २ तोला और शुद्ध गुग्गुलु १६ तोला डाल कर पकाएँ। पाक शेषके समय निम्न प्रत्येक द्रव्यका एक तोला चूर्ण डालकर मिला दें—रास्ना विडङ्ग, मिरच, पिप्पली, दन्तीमूल, जटामांसी, सोंठ और देवदारु।

मात्रा—छः रत्तीसे चार माशा।

रोग—आमवात, कटिशूल, गृध्रसी आदि।

त्रिफलादि घृत †—गौका घी ३½ सेर, त्रिफला क्वाथ

महाभयारिष्ट इति कश्यपेन प्रकल्पितः॥

काश्यपसंहिता; राजयक्ष्मचिकित्सिताध्याय; पृष्ठ ७७।

* शिवाबिभीतामलकीफलानां प्रत्येकशो मुष्टिचतुष्टयञ्च।
तोयाढके तत्क्वथितं विधाय पादावशेषे स्ववतारणीयम्॥
एरण्डतैलं द्विपलं निधाय पिचुत्रयं गन्धक नामकस्य।
पचेत्पुरस्यात्र पलद्वयञ्च पाकावशेषे च विचूर्ण्य दद्यात्॥
रास्ना विडंगं मरिचं कणा च दन्ती जटा नागरदेवदारु।
प्रत्येकशः कोलमितं तथैषां विचूर्ण्य निःक्षिप्य नियोजयेच्च॥
आमवाते कटीशूले गृध्रसी क्रोष्टुशीर्षके।
न चान्यदस्ति भैषज्यं यथायं गुग्गुलुः स्मृतः॥

—रसेन्द्र सार संग्रह; आमवातचिकित्सा; श्लोक १६से२० तक।

† त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम्।

१३ सेर, दूध ३$\frac{1}{4}$ सेर, कल्कके लिये त्रिफला ६४ तोले; यथाविधि सिद्ध करें।

मात्रा—आधा तोला प्रतिदिन सायंकाल सेवन करें।

रोग—तिमिर रोग।

त्रिफलादि घृत (१)†—घृत ३$\frac{1}{4}$ सेर, त्रिफला क्वाथ १३ सेर, शतावरीका रस १३ सेर, कल्कके लिये मुलैठी ६४ तोला, यथाविधि घृत पाक करें।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—त्रिदोषज तिमिर।

अनुपान—मधु।

महात्रिफलादि घृत ‡—गौका घी ३$\frac{1}{4}$ सेर, त्रिफला

तिमिराण्यचिराद्धन्ति पीतमेतन्निशामुखे।

—भैषज्यरत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक १७२।

† फलत्रिका भीरुकषायसिद्धं कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम्।
सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं हन्यात्त्रिदोष तिमिरं प्रवृद्धम्॥

—भैषज्यरत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक १७२।

‡ त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृंगरसस्य च।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्य्याश्च तत्समम्।
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा॥
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत्॥
कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम्।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका॥

क्वाथ ३¼ सेर (मिलित त्रिफला १२८ तोला, क्वाथार्थ जल १६ सेर, शेष ३¼), भांगरेका रस ३¼ सेर, बाँसेका रस ३¼ सेर, शतावरीका रस ३¼ सेर, बकरीका दूध ३¼ सेर, गिलोयका स्वरस ३¼ सेर, आँवलेका रस ३¼ सेर; कल्क द्रव्य—पिप्पली, द्राक्षा, त्रिफला, नीलोत्पल, खाण्ड मुलहठी, क्षीर काकोली, छोटी कटेरी सब मिलाकर ६४ तोला, यथाविधि घृत सिद्ध करें।

मात्रा तथा सेवन विधि—आधा तोला घृत भोजनसे पूर्व, मध्य तथा अन्तमें सेवन करें।

रोग—रात्र्यन्ध, आँख दुखना, पडवाल, मन्ददृष्टि, नेत्रकण्डू, नेत्रस्राव, आसन्न दृष्टि (समीप दृष्टि अर्थात् पासकी चीज़ोंको देखनेकी आँखमें क्षमता होना और दूरस्थ द्रव्योंका न दीखना), दूर दृष्टि आदि नेत्र रोग।

तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत्।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानञ्च शस्यते॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे॥
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे च दारुणे।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च॥
अदृष्टिं मन्ददृष्टिञ्च कफवातप्रदूषिताम्।
स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक्॥
गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम्।

त्रैफल घृत *—घृत २½ सेर, त्रिफला क्वाथ ४½ सेर (त्रिफला २¾ सेर, जल ६४ सेर, शेष ४¾ सेर); कल्कके लिए त्रिफला, त्रिकटु, द्राक्षा, मुलहठी, वायविडङ्ग, नागकेसर, नीलोत्पल, अनन्तमूल, कृष्ण सारिवा, लाल चन्दन और हल्दी प्रत्येक दो तोला; यथा विधि सिद्ध करें।

मात्रा—आधा तोला।

सर्वनेत्रामयं हन्यात् त्रिफलाद्यं महद् घृतम् ॥
—भैषज्यरत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक १७१से१८० तक।

* त्रिफलाव्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम्।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥
घृत प्रस्थं पचेदेतत् सर्वनेत्ररुजापहम्।
तिमिरं दोषमास्रावं कामला काचमर्बुदम् ॥
विसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च।
खालित्यं पलितं चैव केशानां पतनं तथा ॥
विषमज्वरमर्माणि शुक्रञ्चाशु व्यपोहति।
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ॥
तान् सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
न चैतस्मात्परं किञ्चिद्दर्षिभिः काश्यपादिभिः ॥
दृष्टि प्रसादनं दृष्टं यथा स्यात् त्रैफलं घृतम् ॥
भैषज्यरत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक १८१से१८६ तक।

रोग—तिमिर, नेत्रस्राव, कामला, प्रदर, कण्डू, खालित्य तथा आँखोंके सब रोगोंमें यह लाभ करता है, दृष्टि को निर्मल करता है।

हरीतक्यादि योग †—हरड, बहेडा, आँवला और पाँचों पञ्चमूलका क्वाथ १० मन ६ सेर ४८ तोले, इतना ही विदारी कन्दका स्वरस, दूध २० मन १३ सेर १६ तोले; पिप्पली, मुलहठी, महुएके फूल, काकोली, क्षीर काकोली, कौंच बीज, जीवक, ऋषभक और क्षीर विदारी का कल्क २५ सेर ४८ तोले, गौ घृत २ मन २२ सेर ३२ तोले, यथाविधि सिद्ध करें।

मात्रा तथा सेवन विधि—पाचन शक्तिके अनुसार आधेसे एक तोलेकी मात्रामें सेवन करें

---

† हरीतक्यामलकबिभीतकपञ्चपञ्चमूलनिर्यूहेण पिप्पली-मधुमधूककाकोलीक्षीरकाकोल्यात्मगुप्ताजीवकर्षभकक्षीरशुक्ला-कल्कसंप्रयुक्तेन विदारीस्वरसेन क्षीराष्टगुणसंप्रयुक्तेन च सर्पिषः कुम्भं साधयित्वा प्रयुञ्जानोऽग्निबलसमां मात्रां, जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषष्टिकमुष्णोदकानुपान-मश्नन्, जराव्याधिपापाभिचारव्यपगतभयः शरीरेन्द्रियबुद्धि-बलमतुलमुपलभ्याप्रतिहतसर्वारम्भः परमायुरवाप्नुयादिति ॥

चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; अभयामलकीय रसायन पाद; ७४।

पथ्य—औषध जीर्ण हो जाने पर दूध और घीके साथ शाली व साठीके चावल खाएं। गरम पानी पिएं।

रोग—इसका नियमित सेवन शरीरके अंगोंको बल देता है, बुद्धि तीव्र करता है, बुढ़ापेको दूर करके आयु दीर्घ करता है।

अष्टाङ्ग सग्रंहकार * के अनुसार इसमें द्रव्योंका परिमाण निम्न है—घी २ मन २२ सेर ३२ तोला, हरड़ आदिका क्वाथ ५ मन ५ सेर ८ तोले, विदारीकन्दका स्वरस ५ मन ५ सेर ८ तोले, दूध २० मन १९ सेर १६ तोले और पिप्पली आदिका कल्क २५ सेर ४८ तोले।

चार रसायनें †—आँवला और हरड़, आँवला और

---

* अभयामलकबिभीतकपञ्चपञ्चमूलनिर्यूहे।
वल्लीपलाशकरसे द्विगुणे क्षीरेऽष्टगुणे च विपचेत॥
घृतस्य कुम्भं मधुकं मधूकं काकोलियुग्मं च बला स्वगुप्ताम्।
सक्षीरशुक्लमृषभं सजीवमुष्याम्बुपस्तच्च पिबेत्गुणाढ्यम्॥
—अष्टाङ्गसग्रंह

† अथामलकहरीतकीनामामलकविभीतकानां हरीतकीविभीतकानामामलकहरीतकीविभीतकानां वा पलाशत्वगवनद्धानां मृदावलिप्तानां कुकूलस्विन्नानामकुलानां पलसहस्रमुदूखले संपोष्य दधिघृतमधुपललतैलशर्करासंप्रयुक्तं भक्षयेदनुभुज्य यथोक्तेन विधिना तस्यान्ते यवाग्वादिभिः प्रकृत्यवस्थापनं, अभ्यङ्गोत्सादनं सर्पिषा यवचूर्णैश्च, अयं च रसा-

बहेड़ा, हरड़ और बहेड़ा या आँवला, हरड़ और बहेड़ा; इन चारोंमेंसे किसी एक पर ढाककी ताज़ी गीली छाल अच्छी प्रकार लपेट दें और इसके ऊपर मिट्टी लेप कर दें। इसे उपलोंको अग्निमें स्विन्न करें। पलाशकी छाल तथा अपने जलीय भागके वाष्पोंसे अन्दरके पदार्थ स्विन्न हो जायँगे। सम्पुटको आगसे बाहर निकाल कर खोल लें और गुठलियोंको निकाल फेंकें। इस प्रकार स्विन्न और गुठलियोंसे रहित उस योगको १०० सेर लेकर ऊखलमें कुचलें। यदि आँवले और हरड़ोंका योग हो तो दोनों द्रव्य समान समान भाग में लें।

सेवन विधि तथा पथ्य—इसमें दही, घी, मधु, तिलकल्क तिलतेल, तथा खाण्ड मिला कर कुटीप्रावेशिक विधिसे खाएं और कोई आहार न करें। इसके पश्चात् पेया आदि के क्रमसे पथ्य पर रहते हुए स्वाभाविक भोजन पर आ जाएं। प्रतिदिन घीकी मालिश और जौके आटेसे उबटन करना चाहिए। अग्निबलके अनुसार अधिकसे अधिक दिन

यनप्रयोगप्रकर्षो द्विस्तावदग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रतिभोजनं यूषेण पयसा वा षष्टिकः ससर्पिष्कः, अतः परं यथासुखविहारः कामभक्ष्यः स्यात्; अनेन प्रयोगेणर्षयः पुनर्युवत्वमवापुः, बभूवुश्चानेकवर्षशतजीविनो निर्विकाराः परं शारीरबुद्धीन्द्रियबलसमुदिताः, चेरुश्चात्यन्तनिष्ठया तप इति ॥

चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १, अभयामलकीयरसायनपाद; ७३।

में दो बार इस योगका सेवन करना चाहिए। भोजनमें घृतयुक्त साठीके चावलको यूष या दूधके साथ खाएं।

रोग—असमयमें होने वाले बुढ़ापेके प्रभावोंको दूर करता है, उत्तम रसायन है।

जितने दिन तक इस रसायनका सेवन किया जाय उससे दुगुने दिनों तक यवागू, यूप, दूध, साठीके चावल आदि पथ्यमें खाना चाहिए और घीकी मालिश तथा जौका उबटन करना चाहिए। ॐ

ब्राह्म रसायन †—पाँचों पञ्चमूलोंमें प्रत्येक पृथक्-

ॐ प्रयोगान्ते ततो द्विगुणं कालं यवागूयूषक्षीरघृतषष्टिका-समाहारोऽभ्यञ्जनं सर्पिरुद्वर्तनं यवचूर्णमिति ॥

अष्टाङ्गसंग्रह; उत्तरस्थान; अध्याय ४९।

† पञ्चानां पञ्चमूलानां भागान्दशपलोन्मितान्।
हरीतकीसहस्रं च त्रिगुणामलकं नवम् ॥
विदारीगन्धां बृहतीं पृश्निपर्णीं निदिग्धिकाम्।
विद्याद्विदारीगन्धाद्यं श्वदंष्ट्रा पञ्चमं गणम् ॥
बिल्वाग्निमन्थस्योनाकं काश्मर्यमथपाटलाम् ॥
पुनर्नवां शूर्पपर्ण्यौ बलामैरण्डमेव च।
जीवकर्षभकौ मेदां जीवन्तीं सशतावरीम्।
शरेक्षुदर्भकाशानां शालीनां मूलमेव च ॥
इत्येषां पञ्चमूलानां पञ्चानामुपकल्पयेत्।
भागान्यथोक्तांस्तत्सर्वं साध्यं दशगुणेऽम्भसि ॥

पृथक् १ सेर, हरड़ १०००, ताज़े आँवले ३०००, इन्हें एकत्र लेकर दस गुने जलमें क्वाथ बनाएँ। हरड़ और

दशभागावशेषं तु पूतं तं ग्राहयेद्रसम्।
हरीतकीश्च ताः सर्वाः सर्वाण्यमलकानि च॥
तानि सर्वाण्यनस्थीनि फलान्यापोथ्य कूर्चनैः।
विनीय तस्मिन्निर्यूहे चूर्णानीमानि दापयेत्॥
मण्डूकपर्ण्याः पिप्पल्याः शङ्खपुष्प्याः प्लवस्य च।
मुस्तानां सविडङ्गानां चन्दनागुरुणोस्तथा॥
मधुकस्य हरिद्राया वचायाः कनकस्य च।
भागांश्चतुष्पलान् कृत्वा सूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा॥
सितोपलासहस्रं च चूर्णितं तुलयाऽधिकम्।
तैलस्य द्व्याढकं तत्र दद्यात्त्रीणि च सर्पिषः॥
साध्यमौदुम्बरे पात्रे तत्सर्वं मृदुनाऽग्निना।
ज्ञात्वा लेहमदग्धं च शीतं क्षौद्रेण संसृजेत्॥
क्षौद्रप्रमाणं स्नेहार्धं तत्सर्वं घृतभाजने।
तिष्ठेत्संमूर्च्छितं तस्य मात्रां काले प्रयोजयेत्॥
या नोपरुन्ध्यादाहारमेवं मात्रा जरां प्रति।
षष्टिकः पयसा चात्र जीर्णे भोजनमिष्यते॥
वैखानसा वालखिल्यास्तथा चान्ये तपोधनाः।
रसायनमिदं प्राश्य बभूवुरमितायुषः॥
मुक्त्वा जीर्णं वपुश्चाग्र्यमवापुस्तरुणं वयः।
वीततन्द्राक्लमश्वासा निरातङ्काः समाहिताः॥

आँवले तौलमें लेने हों तो १२½ सेर हरड़ें और ३६½ सेर आँवले लेने चाहिये। हरड़ और आँवलोंको अन्य क्वाथ्य

मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रं तपोधनाः।
ब्राह्म्यं तपो ब्रह्मचर्यं चेरुश्चात्यन्तनिष्ठया॥
रसायनमिदं ब्राह्ममायुष्कामः प्रयोजयेत्।
दीर्घमायुर्वयश्चाग्र्यं कामांश्चेष्टान् समश्नुते॥

—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १, अभयामलकीय रसायनपाद; श्लोक ३६ से ५५ तक।

वाग्भटने भी इस योगको दिया है। इसमें घी और तैल का परिमाण चरकसे दुगुना है।

पथ्यासहस्रं त्रिगुणधात्रीफलसमन्वितम्।
पञ्चानां पञ्चमूलानां सार्धं पलशतद्वयम्॥
जले दशगुणे पक्त्वा दशभागस्थिते रसे।
आपोथ्य कृत्वा व्यस्थीनि विजयामलकान्यथ॥
विनीय तस्मिन्नियूंहे योजयेत्कुडवांशकम्।
त्वगेलामुस्तरजनीपिप्पल्यगुरुचन्दनम्॥
मण्डूकपर्णीकनकशङ्खपुष्पीवचाप्लवम्।
यष्ट्याह्वयं विडङ्गं च चूर्णितं तुलयाधिकम्॥
सितोपलार्धभारं च पात्राणि त्रीणि सर्पिषः।
द्वे च तैलात्पचेत्सर्वं तदग्नौ लेह्यतां गतम्॥
अवतीर्णं हिमं युञ्ज्याद्द्विशैः क्षौद्रशतैस्त्रिभिः।
ततः खजेन मथितं निदध्याद्घृतभाजने॥

द्रव्योंके साथ खौला डालनेके स्थान पर पतले कपड़ेकी ढीली पोटलीमें बाँध कर डालनेसे सुविधा रहती है। $\frac{1}{10}$ भाग शेष रहने पर पात्र को आग परसे उतार लें और क्वाथको छान लें। हरड़ और आँवलोंको गुठली निकाल फेंकें और रेशे निकाल दें। प्राप्त हरड़ और आँवलोंकी पीठीको छाने हुये कषायमें डाल दें और उसमें निम्न द्रव्य डाल दें—मण्डूकपर्णी, पिप्पली, शङ्खपुष्पी, केवटी मोथा, नागर मोथा, वायविडङ्ग, लाल चन्दन, अगर, मुलहठी, हल्दी, वच, नागकेसर, छोटी इलायची और दालचीनी प्रत्येकका चूर्ण ३२ तोले, मिश्री १ मन ३० सेर, तिल-तेल २५ सेर ४८ तोला, घी ३८ सेर ३२ तोला। इस सबको मन्द मन्द अग्नि पर कलई किये हुये ताम्र पात्रमें पकाएँ। जब लेह ठीक बन जाय उतार लें। दग्ध न होने दें। ठण्डा होने पर घी और तेल के मिलित परिमाणसे

या नोपरुन्ध्यादाहारमेकं मात्रास्य सा स्मृता।
षष्टिकः पयसा चाऽन्नजीर्णे भोजनमिष्यते॥
वैखानसा वालखिल्यास्तथा चाऽन्ये तपोधनाः।
ब्रह्मणा विहितं धन्यमिदं प्राश्य रसायनम्॥
तन्द्राश्रमक्लमवलीपलितामयवर्जिताः।
मेधास्मृतिबलोपेता बभूवुरमितायुषः॥
—अष्टांगहृदय; उत्तरस्थान; अध्याय ३९; रसायन अध्याय; श्लोक १५ से २३ तक।

आधा—३२ सेर—विशुद्ध मधु मिला दें और अच्छी प्रकार मिल जाने पर घीसे भावित पात्रमें रख छोड़ें।

इस रसायन लेहको च्यवनप्राशावलेहकी तरह भी पकाया जा सकता है। विधि इस प्रकार है—क्वाथ पाक के समय आँवले और हरड़की पोटली डाल दें। क्वाथ तैयार हो जाने पर इनकी गुठलियाँ निकाल फेंके और इन्हें पीस कर कपड़ेमें हाथ से मल कर छान लें। कपड़े में बचे हुये रेशे आदिको फेंक दें। छाननेसे प्राप्त पीठीको तेल और घीके यमकमें भून लें। मृदु भुन जाने पर वस्त्र से छाना हुआ क्वाथ और मिश्री डाल दें। मन्द-मन्द पकाएँ। ठीक पक जाने पर नीचे उतार लें और मण्डूकपर्णी आदिका चूर्ण मिला कर लकड़ीके खोंचेसे अच्छी तरह मिला दें। शीतल होने पर शहद मिलाएँ।

मात्रा—आधेसे एक तोला। इस मात्रासे भूख बन्द हो जाय तो अग्नि बलके अनुसार मात्रा कम या अधिक की जा सकती है।

रोग—तन्द्रा, क्लम, श्वास आदि रोगोंको यह रसायन दूर करती है और दीर्घ आयु प्रदान करती है।

पथ्य—औषधके जीर्ण होने पर दूधके साथ साठीके चावल खाना चाहिये।

इस योगमें और हरीतक्यादि योगमें वर्णित पाँच पञ्चमूल ये हैं—

पहला पञ्चमूल—शालपर्णी (विदारिगन्धा) पृश्नि-पर्णी, छोटी कण्टकारी, बड़ी कटैली और गोखरू। इसे विदारीगन्धाद्यगण या क्षुद्र पञ्चमूल भी कहते हैं।

दूसरा पञ्चमूल—बिल्व, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और अरणी। इसे महत्पञ्चमूल कहते हैं।

तीसरा पञ्चमूल—पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, बला और एरण्ड।

चौथा पञ्चमूल—जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती और शतावरी।

पाँचवाँ पञ्चमूल—सरकण्डा, ईख, दर्भ, कास और शालिकी जड़।

इनमें से जो क्षुप हैं या जिनकी जड़ें छोटी होती हैं उनकी सम्पूर्ण जड़ ही लेनी चाहिये और जो बड़े वृक्ष हैं जैसे महापञ्चमूल उनकी जडकी छाल ली जानी चाहिये।

इन पाँचों पञ्चमूलकी प्रत्येक औषधि १ सेर लेनी चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक पञ्चमूल ५ सेर होगा और पाँचों पञ्चमूल २५ सेर होंगे।

उपयोग

प्रायः सब योगोंमें त्रिफला डाला जाता है। प्राचीन आयुर्वेदिक ऋषियों ने इसको बहुत उपयोगी समझा था। सुप्रसिद्ध विद्वान् वाग्भट्ट ने इसकी प्रशंसा करते हुये यहाँ तक लिख डाला है कि त्रिफला सब रोगोंको नाश करके

मेधा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ाती है *। रसायन रूपमें त्रिफला बहुत महत्त्वपूर्ण द्रव्य समझा गया है। शरीरको रोगोंसे बचाने और स्वास्थ्य वृद्धि के लिये भी त्रिफलाका प्रतिदिन सेवन किया जाता है। स्वेदक, सारक, वाजीकरण और सामान्य बल्य तथा रसायन औषधियोंमें आमलकादि वर्गमें सुश्रुत † ने आँवले और हरड़को गिनाया है।

रसायन रूपमें त्रिफलाको सेवन करनेकी एक विधि चरक और गोविन्ददास ‡ लिखते हैं—आहारके प्रथम दो बहेड़े, भोजनके पश्चात् चार आँवले और आहार के परिपक्व

---

* त्रिफला सर्वरोगघ्नी मेधायुः स्मृतिबुद्धिदा ॥

—अष्टाङ्गहृदय; उत्तरस्थान; रसायन अध्याय ३९; श्लोक ४३।

† त्रिफला सर्वरोगघ्नो त्रिभाग घृतमूर्छितः।
वयसः स्थापनं चापि कुर्यात्संततसेविता ॥

—सु० सू० अ० ४५ श्लोक ७१

‡ जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भुक्ते द्वे बिभीतके।
भुक्त्वा तु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्यामलकानि च ॥
प्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलाया रसायनम्।
जीवेद् वर्षशतं पूर्णमजरोऽव्याधिरेव च ॥

—भैषज्यरत्नावली; रसायनाधिकार; श्लोक ३,४।

—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; करप्रचितीय रसायन पाद श्लोक ४०, ४१।

हो जाने पर एक हरड़ घी और मधुके साथ खाना चाहिये। इस त्रिफला रसायनका एक वर्ष तक प्रयोग करनेसे मनुष्य बुढ़ापे और व्याधि से रहित होकर दीर्घ काल तक जीवित रहता है। चरक $ त्रिफला सेवन की कुछ विधियाँ लिखते हैं—

त्रिफलाके कल्कको नये लोह पात्रमें लेप करें। चौबीस घण्टे बाद उसे उतार कर शहदके शर्बतमें घोल कर पी जायँ। यह पच जाने पर खूब घी डाले हुये चावल आदि का भोजन करें। एक वर्ष तक इस रसायनका सेवन करना चाहिये।

$ त्रैफलेनायसीं पात्रीं कल्केनालेपयेन्नवाम्।
तमहोरात्रिकं लेपं पिवेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम्॥
प्रभूतस्नेहमशनं जीर्णे तत्र प्रशस्यते।
अजरोऽरुक् समाभ्यासाज्जीवेच्चैव समाः शतम्॥
मधुकेन तुगाक्षीर्या पिप्पल्या क्षौद्रसर्पिषा।
त्रिफला सितया चापि युक्ता सिद्धं रसायनम्॥
सर्वलोहैः सुवर्णेन वचया मधु सर्पिषा।
विडङ्गपिप्पलीभ्यां च त्रिफला लवणेन च॥
संवत्सरप्रयोगेण मेधास्मृतिबलप्रदा।
भवत्यायुष्प्रदा धन्या जरारोगनिबर्हणी॥
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; करप्रचितीय रसायनपाद; श्लोक ४२ से ४६ तक।

त्रिफलाके साथ मुलहठी, वशंलोचन, पिप्पली और खायड मिलाकर मधु और घीके साथ सेवन करें। यह उत्तम रसायन औषधि है।

हरड़ एक तोला, बहेड़ा एक तोला, आँवला एक तोला, चाँदी, बङ्ग, सीसक, ताम्बा, यशद् और लोहा प्रत्येककी भस्म सोलह रत्ती, सुवर्ण भस्म एक तोला, वचा, वाय-विडङ्ग, और सेंधा नमक प्रत्येक एक तोला; इनका चूर्ण बना कर एक साल तक प्रयोग करें। यह रसायन है। दोसे चार रत्तीकी मात्रामें शहद् और घीके साथ सेवन की जाती है।

उपर्युक्त सब रसायनें मेधा, स्मृति, बुद्धि, बल और आयुको बढ़ाती हैं। रोगोंको नष्ट करके शरीरमें रोग क्षमता को बढ़ाती हैं।

महर्षि आत्रेय ने अनेक रोगोंमें त्रिफलाका उपयोग करनेका उपदेश किया है। हारीत संहिता*से दी गई नीचे

---

* वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा।
श्लेष्मे त्रिकटुकोपेता मेहे समधुवारिणा॥
कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवेनाग्निमान्द्यहा।
चक्षुर्धावनके क्वाथो नेत्ररोगनिवारणः॥
घृतेन हरते कण्डूं मातुलुङ्गरसैर्वमिम्।
गुल्मार्शोगुडसूरणैः स स्यात्तु गुणाकारकः॥
क्षीरेण राजयक्ष्माणां पाण्डु रोगं गुडेन च।
भृङ्गराजरसेनापि घृतेन सह योजितः॥

की तालिकामें यह दिखाया गया है कि भिन्न-भिन्न रोगोंमें किन-किन औषधियोंके साथ त्रिफलाका प्रयोग करना चाहिये।

नाम रोग	नाम औषध
वातिक रोग	घी और गुड़।
पैत्तिक रोग	शहद और खाण्ड।
श्लैष्मिक रोग	सोंठ, मिरच और पिप्पली।

वलीपलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः ॥
सक्षीरः सगुडः क्वाथो विषमज्वरनाशनः।
सशर्कराघृतः क्वाथः सर्वजीर्णज्वरापहः ॥
एषा नराणां हितकारिणी च सर्वप्रयोगे त्रिफला स्मृता च।
सर्वामयानां शमनी च सद्यः सतेज कान्तिं प्रतिमां करोति ॥
शोफे तथा कामलपाण्डुरोगे तथोदरे मूत्रयुताहिता च।
क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च ॥
स्याक्षेप्र रोगे च शिरोगदे च
कुष्ठे च कण्डूव्रणपीडने च।
मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमान्द्ये ॥
जलेन पीतस्त्रिफलादि कल्कः ॥

—हारीतसंहिता; कल्पस्थान; अध्याय २; श्लोक ६ से १५ तक।

मेह रोग	शहद और जल।
कुष्ठ	घी।
अग्निमान्द्य	सेंधा नमक।
कण्डु	घी।
वमन	बिजोरा निम्बुका रस।
गुल्म और अर्श	गुड़ और जिमिकन्द।
राजयक्ष्मा (क्षय)	दूध।
पाण्डु	गुड़।
बाल पकना	भांगरेका रस और गुड़।
विषम ज्वर	दूध और गुड़के साथ त्रिफला कषाय।
सब प्रकारके जीर्ण ज्वर	खाण्ड और घीके साथ त्रिफला क्वाथ।
शोक, कामला, पाण्डु	गोमूत्र।
अतिसार, ग्रहणी	लस्सी (तक्र)।
निर्बलता, जीर्ण ज्वर	दूध।
नेत्ररोग, शिरोरोग, व्रण, मूत्राघात कामला आदि	जल।

हरड़की तरह त्रिफलाको भी सब ऋतुओंमें रसायन रूपमें सेवन किया जाता है। सरदियोंमें गुड़ और सोंठके साथ, गरमियोंमें खाण्ड और दूधके साथ और वर्षा ऋतुमें

सोंठके साथ त्रिफला सब रोगोंके शमनके लिये सेवन किया जाता है ※।

रसायनद्रव्य रूपमें भस्मोंका प्रयोग आयुर्वेदमें बहुत होता है। भस्मोंके मारणके लिये त्रिफला बहुत प्रयुक्त होता है। गोपालकृष्ण भट्ट ने सामान्य पुटपाक और लोह मारणके लिये उपयोगी त्रिफलादि गणमें इसका पाठ किया है †।

अनुलोमनके रूपमें त्रिफलाका प्रयोग एक प्रचलित घरेलू दवा है। रातको सोते समय दो-तीन माशे त्रिफला चूर्णको दूधके साथ खा लेनेसे अनुलोमक कार्य हो जाता है। कई लोग रातको त्रिफलाको शीत जलमें भिगोकर रख छोड़ते हैं। सुबह उठते ही पानीमें त्रिफला मसल लिया

※ सशीतकाले गुडनागरेण सशर्करा क्षीरयुता तथोष्णे।
वर्षासु शुण्ठीसहिता फलत्रिका फलत्रिका सर्वरुजाहरा स्यात्॥
—हारीतसंहिता; कल्पस्थान; अध्याय २; श्लोक १५,१६।

† त्रिफला.............................।
..........·...............लोहमारकः।
.......· ·......प्रोक्तस्त्रिफलादिरयं गणः।
सामान्यपुटपाकार्थमेतानिच्छन्ति सूरयः॥
—रसेन्द्रसारसंहिता; अध्याय १; श्लोक २२५ से से २२६ तक।

जाता है। कपड़ेमें छान कर मधु मिला कर पी लेते हैं। कुछ लोग त्रिफलाके प्रयोगको रूक्षताजनक समझते हैं। ऐसे व्यक्ति त्रिफला चूर्णको बादाम रोगनके साथ मिला कर अनुलोमन के लिये ले सकते हैं।

हरड़ और आँवला प्रत्येक चार ड्राम और रेवन्द चीनी एक ड्राम लेकर एक पाइण्ट पानीमें कषाय बनाएँ। दो औंसकी मात्राओंमें यह कषाय दिनमें तीन बार दिया जा सकता है। इससे अच्छा अनुलोमन हो जाता है। साथ ही यह पेशाबको भी खुल कर लाता है।

चिरस्थायी मलबन्धके लिये त्रिफलाके चूर्ण, कषाय या अवलेहका निरन्तर सेवन करना चाहिये। विरेचक दस औषधियोंमें चरक* ने हरड़, बहेड़े और आँवलेका परिगणन किया है। तीनों द्रव्योंके समान भाग चूर्णको बादामके तेल और मधुमें मिला कर आठ दिन तक बन्द रख कर चिरस्थायी मलबन्धमें व्यवहार किया जाता है। बादाम तेल मिश्रित यह त्रिफलावलेह एकसे चार चम्मचकी मात्रामें प्रतिदिन या सप्ताहमें दो बार लिया जा सकता है।

गुल्मरोगीकी कोष्ठबद्धतामें हरड़ और गुड़को मिला

---

* द्राक्षाकाश्मर्यपरूषकाभयामलकबिभीतककुवलबदरकर्कन्धुपीलूनीति दशेमानि विरेचनोपगानि भवन्ति।
—चरक; सूत्रस्थान; अध्याय ४; २४।

कर दूधके अनुपानसे रोगीको खिलाना चाहिये †। पिप्पली और मधु युक्त त्रिफला के अन्तः प्रयोगसे गुल्मका भेदन हो जाता है ‡। पित्त गुल्म जैसे एपेण्डिसाइटिसमें त्रिफला कषायके साथ त्रिफलागुग्गुलुका निरन्तर सेवन कराया जाय और अन्य भोजनोंको कम करके दूध विशेष रूपसे दिया जाय तो बहुत लाभ होता है।

हरड़, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक का चूर्ण एक तोला और तीन तोला लोहभस्मको मिला कर दो रत्तीकी मात्रा में दूधके साथ शूल शान्ति के लिये दिया जाता है ¶। बंगसेन§ इसे एक और विधिसे प्रयोग करते हैं—त्रिफला के स्वरसमें लोहभस्मको पकाएँ और त्रिदोषजशूलके शमन

---

† क्षीरानुपानामभयां सगुडां संप्रयोजयेत्।
गुल्मिनां बद्धवर्चानां.. .... ॥
—काश्यपसंहिता; गुल्मचिकित्साऽध्याय; श्लोक १७।

‡ त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः।
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय २१; श्लोक १२६।

¶ तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम्।
क्षीरेण पायेद्धीमान् सद्यः शूलनिवारणम्॥
—रसेन्द्रसारसंग्रह; शूलरोगचिकित्सा; श्लोक ३।

§ अक्षामलकशिवानां स्वरसैः पक्वं सुलोहजञ्च रजः।
सगुडं यद्युपभुंक्ते मुञ्चति त्रिदोषजं शूलम्॥
—वंगसेनसंहिता; परिणामशूलचिकित्सा; श्लोक ४३।

के लिये गुड़के साथ इसका प्रयोग करें। त्रिफला, लोह-भस्म और मुलहठी मिला कर मधु और घी के साथ मिश्रित कर चाटनेसे भी त्रिदोषजशूल नष्ट होती है ¶।
त्रिफला और अमलतासके क्वाथमें मधु और खाण्डका प्रक्षेप दे कर पीनेसे रक्तपित्त, दाह तथा शूल दूर होते हैं §।

व्रणोंपर त्रिफलका अन्तः तथा बाह्य दोनों प्रयोग होता है। बन्द पात्रमें जला कर बनाई हुई त्रिफलाकी भस्म एक भाग और वैज़लीन चार भाग मिला कर मर-हम बनाई जाती है। यह उत्तम व्रण रोपकका काम करती है। व्रणोंके रोपणके लिए तथा फिरंग व्रणों पर भी यह लेप लगाया जाता है। शोथ युक्त व्रणोमें क्लेद, पाक, स्राव, गन्ध और वेदनाको दूर करनेके लिए त्रिफलाके क्वाथ में विशुद्ध गुग्गुलु मिला कर पिया जाता है *। विद्रधि,

¶ त्रिफलां लोहचूर्णन्तु यष्टीमधुकमेव च।
मधुसर्पिर्युतं लिह्याच्छूलं हन्ति त्रिदोषजम्॥
—बंगसेनसंहिता; परिणामशूलचिकित्सा; श्लोक २८।

§ त्रिफलारग्वध क्वाथं सक्षौद्रं शर्करान्वितम्।
पाययेद्रक्तपित्तघ्नं दाहशूलनिवारणम्॥
—भैषज्यरत्नावली, शूलरोगाधिकार; श्लोक ३०।

* ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणा
महान्तः सरुजः सशोथाः।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन

नाड़ीव्रण, गण्डमाला और दूसरे लम्बे चलने वाले व्रणोंमें निम्न गोलियाँ निरन्तर सेवन करनेसे लाभ होता है—त्रिफला तीन तोला, पिप्पली दो तोला और गुग्गुलु पांच तोला; पांच-पांच यवकी गोलियाँ बनाएं, प्रतिदिन दोसे चार गोली तक त्रिफला कषायके अनुपानसे ली जानी चाहिएं। इसके निरन्तर सेवनके साथ-साथ बाह्य उपचार भी जारी रखना चाहिये। वाग्भट्ट * दीर्घकालप्रसक्त ग्रन्थिमें त्रिफलाका प्रयोग करता है। ग्रन्थिविसर्पमें ग्रन्थि पर त्रिफलाका लेप किया जाता है †। मुख पाक और मुख स्फोटमें त्रिफला कषायके गण्डूष करने चाहिए तथा त्रिफलाका अन्तः प्रयोग भी करना चाहिए जिससे कोष्ठकी शुद्धि हो जाय। त्रिफलाके कषाय को गोमूत्रमें पका कर पीनेसे अण्डकोषोंकी शोथ नष्ट हो जाती है ‡।

पीतेन शान्तिं त्रिफलारम्भेन ॥

भैषज्यरत्नावली; व्रणशोथाधिकार; श्लोक ४४।

* दीर्घकालप्रसक्ते तु ग्रन्थौ त्रिफलां प्रयुञ्जीत।

अष्टाङ्गसंग्रह; चिकित्सतस्थान; अध्याय २०।

† त्रिफलायाः प्रोयोगैश्च ....।

अष्टाङ्गहृदय, चिकित्सतस्थान; अध्याय १८; विसर्प चिकित्सा; श्लोक २६।

‡ फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेण साधितम्।

वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्यात् वृषणसम्भवम् ॥

भैषज्यरत्नावली; शोथाधिकार, श्लोक ४३।

मेहरोग जैसे शुक्रमेह, रक्तमेह, पूयमेह, मधुमेह, बहु-मेह आदिमें त्रिफलाके चूर्ण और कषाय विशेष उपकारक होते हैं। सम्भवतः यकृत्के शोधक होनेके कारण त्रिफला मेहरोगहर होता है। चरक ने सूत्रस्थानके तेईसवें अध्याय में मेह और मूत्र सम्बन्धी रोगोंके नाशके लिए जो योग दिये हैं उनमें अधिकांशमें अन्य द्रव्योंके साथ त्रिफलाका प्रयोग किया गया है। हारीत * सब प्रकारके प्रमेहोंमें हरड़ के चूर्णमें शहद मिला कर खानेके लिए सिफ़ारिश करते हैं। मेहरोगोंमें और मूत्र सम्बन्धी विकारोंमें त्रिफलाके नियमित प्रयोग करनेसे लाभ होता है †। मूत्र कृच्छ्र और प्रमेहमें लस्सीके साथ हरड़ सेवन करनी चाहिए ‡। पूयमेहमें अन्तः उपचारके साथ-साथ त्रिफला कषायमें थोड़ा सा कत्था तथा फिटकरी डालकर कुछ दिन तक उत्तरवस्ति देते हैं।

---

* .... मधुना च विमिश्रितम्।
हरीतक्याश्च चूर्णं वा सर्वमेहनिवारणम्॥
हारीतसंहिता; तृतीयस्थान; अध्याय २८; प्रमेह चिकित्सा; श्लोक ४३।

† .... त्रिफलायास्तथैव च।
...................यान्ति मेहादयः शमम्॥
चरक; सूत्रस्थान; अध्याय २३; श्लोक १७।

‡ मूत्रकृच्छ्रं प्रमेहं च पीतमेतद्व्यपोहति।
तक्राभयाप्रयोगैश्च .. .. ॥
चरक; सूत्रस्थान; अध्याय २३; श्लोक १६; १७।

स्त्रियोंके उत्पादक अंगोंके रोगोंमें भी आंवले और हरड़का प्रयोग किया जाता है। सुश्रुत ने मुस्तादि वर्ग में आंवले और हरड़का पाठ किया है। इस गणके गुण गर्भाशय और योनिरोगोंको दूर करना, स्तन्य दूधको शुद्ध करना आदि हैं। रक्त प्रदरमें बहुत अधिक भी रक्त जाता हो तो आंवला, हरड़ और रसौंतको सम भागमें जलके साथ पीनेसे बन्द हो जाता है *।

यकृत् और प्लीहाके रोगोंके लिए त्रिफलादिचूर्ण या अन्य त्रिफलाके योग लाभदायक होते हैं। कामलामें यकृत् से पित्तका निरहरण करनेके लिए त्रिफला कषाय या त्रिफलादि क्वाथ दिया जाता है। पाण्डुमें निर्बल मनुष्यको प्रतिदिन गुड़ और हरड़का सेवन करना चाहिए †।

मदात्ययमें त्रिफला चूर्णको घी, शहद और खाण्डमें मिला कर सेवन किया जाता है ‡। ऊरुस्तम्भमें कटुकी

---

* धात्री च पथ्या च रसाञ्जनञ्च
विचूर्ण्य सर्वं सजलं निपीतम्।
असृक्प्रदरं रक्तस्रवमुग्रवेगं
निवारयेत् सेतुरिवाम्बुवेगम्॥
रसेन्द्रसारसंग्रह; प्रदरचिकित्सा; श्लोक १६।

† दुर्बलस्य प्रयोज्या तु नित्यं गुडहरीतकी।
काश्यपसंहिता; प्लीहहलीमक चिकित्साध्याय।

‡ त्रिफला वा प्रयोक्तव्या सघृतक्षौद्रशर्करा।
अष्टाङ्गहृदय; चिकित्सास्थान; अध्याय ७; श्लोक १०४।

चूर्ण तथा मधुके साथ त्रिफलाका सेवन किया जाता है * ।

चिरस्थायी त्वक् रोगोंमें त्रिफलाके चूर्ण, गुग्गुलु; घृत आदिका कुछ काल निरन्तर सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है । कुष्ठघ्न दस औषधियोंमें चरक संहितामें हरड़ और आंवला भी परिसंख्यात हैं † ।

त्रिफला आँखोंके लिए हितकर द्रव्य है ‡ । इसके कषायसे प्रतिदिन प्रातःकाल आँख धोनेसे आँखोंके रोग नष्ट होते हैं और फिर दुबारा नहीं होते × । भोजन और रहन सहनको नियमित करके प्रतिदिन सायंकाल त्रिफला चूर्णको घी और शहदके साथ मिला कर सेवन करनेसे

---

* लिह्याद् वा त्रिफला चूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ।
भैषज्यरत्नावली; उरुस्तम्भाधिकार; श्लोक १० ।

† खदिराभयामलकहरिद्रारुष्करसप्तपर्णारग्वधकरवीरविडङ्गजातिप्रवाला इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि भवन्ति ॥
चरक; सूत्रस्थान; अध्याय ४; १४ (१३) ।

‡ त्रिफला ………………… ।
चक्षुष्यः ‥ ……कथितो भिषग्भिरियम् ॥
भैषज्यरत्नावली, नेत्ररोगाधिकार; श्लोक ३५ ।

× जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ।
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥
चक्रदत्त; नेत्ररोगचिकित्सा; श्लोक ९६ ।

आँखोंके सब विकार दूर होते हैं × । हरड़ तीन, बहेड़े छह और बारह आंवलोंको १२८ तोले जलमें सिद्ध करें सोलह तोला शेष रहने पर छान लें । इस काथको पीनेसे अभिष्यन्द, नेत्रस्राव, आँखोंकी लालिमा, आँखोंके आगे अन्धेरा आना, नेत्रशोथ तथा नेत्रशूल आदि रोग नष्ट हो कर आँखें निर्मल हो जाती हैं * । नेत्रस्रावमें दोषों की विवेचना करके त्रिफला काथको मधु, घृत अथवा पिप्पली चूर्णके साथ मिला कर पीना चाहिए † । हरड़की गुठलीकी गिरी तीन भाग, बहेड़ेकी मींगी दो भाग और आंवलेके बीज एक भागको एक साथ पीसकर वर्ति बनाएं । इसको घिसकर आंजनेसे आँखोंकी लाली तथा नेत्रके रोहे

× त्रिफलं चूर्णमपथ्यवर्जी सायं समश्नातिहविर्मधुभ्याम्
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथाक्षीणधनो मनुष्यः ॥
चक्रदत्त; नेत्ररोगचिकित्सा; श्लोक ६५ ।

* पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः षड् धात्र्यो द्वादशैव तु ।
प्रस्थार्द्धैः सलिलक्काथमष्टभागावशेषितम् ॥
पीत्वाभिष्यन्दमास्रावं रागञ्च तिमिरं जयेत् ।
संरम्भरागशूलाश्रनाशनं दृक् प्रसादनम् ॥
चक्रदत्त; नेत्ररोगचिकित्सा; श्लोक ४५, ४६ ।

† स्रावेषु त्रिफलाक्काथं यथादोषं प्रयोजयेत् ।
क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं............. ॥
भैषज्यरत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक २०१ ।

शीघ्र नष्ट होते हैं * ।

तिमिर रोगमें त्रिफला क्वाथमें घी मिला कर प्रतिदिन सेवन करनेसे लाभ होता है †। पैत्तिक तिमिररोगमें प्रचुर घृत मिश्रित, वातज तिमिररोगमें तेल मिश्रित और कफज तिमिर रोगमें मधु मिश्रित त्रिफलाका प्रयोग किया जाता है ‡। त्रिफलाके कल्क, क्वाथ अथवा चूर्णको प्रतिदिन शहद या घृतके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण तिमिर रोग नष्ट होते हैं §।

अर्शमें त्रिफलाका प्रयोग किया जाता है। गोमूत्रमें एक

---

* पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजैस्त्रिद्वयेकभागैर्विदधीत वर्तिम् ।
तयाञ्जयेदश्रमतिप्रगाढमक्ष्णोर्हरेत् कोपमतिप्रवृद्धम् ॥
भैषज्यरत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक २०८ ।

† सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी ॥
चक्रदत्त; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक ६१ ।

‡ लिह्यात् सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां
घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे ।
समीरजे तैलयुतां कफात्मके ।
मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥
भैषज्यरत्नावली; नेत्ररोगचिकित्सा; श्लोक ६६ ।

§ कल्कः क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ।
मधुना हविषा वापि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥
चक्रदत्त; नेत्ररोगचिकित्सा; श्लोक ६४ ।

रात रक्खी हुई हरड़को गुड़के साथ प्रयोग कराएं या हरड़के चूर्णको अथवा त्रिफलाके चूर्णको तक्रके अनुपानसे अर्शमें प्रयोग कराएं §। घीमें भुनी हुई हरड़के चूर्ण के साथ पिप्पली चूर्ण और गुड़ मिला कर अर्शमें अनुलोमनके लिये दिया जाता है ¶। अर्श नाशक दस औषधियोंमें चरक ※ ने हरड़का पाठ किया है※।

त्रिफला विषमज्वरहर, कफपित्तहर और मलस्रंसक होनेसे शरीरसे मल भूत पित्तका निर्हरण करती है। विषमज्वरमें त्रिफला क्वाथमें शहद डाल कर कुछ दिन पिलानेसे ज्वर जाता रहता है। शहदके स्थान पर गुड़ † का भी

---

§ गोमूत्राध्युषितां दद्यात्सगुडां वा हरीतकीम्।
हरीतकीं तक्रयुतां त्रिफलां वा प्रयोजयेत्॥
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १४; श्लोक ६८।

¶ सगुडां पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टां हरीतकीम्।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वाऽपि भक्षयेदानुलोमिकीम्॥
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १४, श्लोक ११६, ११० ।

※ कुटजबिल्वचित्रकनागरातिविषाभयाधन्वयासकदारुहरिद्रावचाचव्यानीति दशेमान्यर्शोघ्नानि भवन्ति।
—चरक; सूत्रस्थान; अध्याय ४; १४ (१२)।

† गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः।
—चक्रदत्त, ज्वरचिकित्सा; श्लोक २०३।

प्रयोग किया जा सकता है। हारीत * लिखते हैं—आँवला हरड़, पिप्पली, वच, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दालचीनी, इलायची और तेजपत्रका क्वाथ मलको पतला करता है, कफको हटाता है, ज्वरका नाश करता है और अग्निको उद्दीप्त करता है।

हरड़ छह तोला पिप्पली चार तोला; गजपिप्पली, चित्रक, हींग, सेंधानमक प्रत्येक एक तोला लेकर चूर्ण बनाएँ और पानीसे रगड़ कर गोलियाँ बनाएँ। इन गोलियोंका सेवन अग्निको दीप्त करनेमें रसायनका काम करता है ‡। इसके सेवनसे पाचक रस उचित मात्रामें उत्पन्न होने लगेगा और भूख बढ़ जायगी। त्रिफलाके कषायका भी नियमित सेवन शीतल, पाचक और पाचन संस्थानके लिये बल्यका काम करता है। त्रिफला, दन्तीमूल और रोहेड़ेकी छालके एक तोला कषायमें सोंठ, कालीमिरच,

---

‡ आमलक्यभया कृष्णाषड्ग्रन्था त्रित्रिकन्तथा।
मलभेदी कफान्तको ज्वरनाशनदीपनः॥
—हारीतसंहिता; तृतीयस्थान; ज्वरचिकित्सा; अध्याय २; श्लोक ८२।

* हरीतकी हरिहरतुल्यषड्गुणा चतुर्गुणा चतुर्विंशाजपिप्पली
हुताशनं सैन्धवहिङ्गुसंयुतं रसायनं कुरुतृपवन्हिदीपनम्॥
—हारीतसंहिता; तृतीयस्थान; मन्दाग्निचिकित्सा; अध्याय ६; श्लोक २६।

पिप्पली और यवक्षारका मिलित चूर्ण सोलह रत्ती डाल कर उदर रोगोंमें पीनेसे लाभ होता है ॐ। भस्मक रोगमें निम्न चूर्ण आधेसे चार रत्तीकी मात्रामें देनेसे रोग वशमें किया जा सकता है†—हरड़, बहेड़ा, आँवला, मोथा, वायविडङ्ग, मिश्री, पिप्पली और आपामार्गके बीज प्रत्येक एक तोला और लोहभस्म आठ तोला ॥

हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ मिरच, और पिप्पली प्रत्येकके सम भाग चूर्णको एक माशा भर प्रतिदिन शहदके साथ चाटनेसे खाँसी दूर होती है ‡।

ॐ पिबेत्कषायं त्रिफलादन्तीरोहीतकैः शृतम् ।
व्योषक्षारयुतं जीर्णे रसैरद्यात्तु जाङ्गलैः ॥
—चरक; चिकित्सितस्थान; उदरचिकित्सा; अध्याय १३,
श्लोक १४८ ।

† त्रिफलामुस्तवेल्लैश्च सितया कणया समम् ।
खरमञ्जरिबीजैश्च लौहं भस्मकनाशनम् ॥
—रसेन्द्रसारसंग्रह; अजीर्णचिकित्सा; श्लोक १०० ।

‡ त्रिफलाव्योष चूर्णञ्च समभागं प्रकल्पयेत् ।
मधुना सह पानात् तु दुष्टकासं नियच्छति ॥
—रसेन्द्रसारसंग्रह; कासचिकित्सा; श्लोक ६० ।

सहायक ग्रन्थ

चरक; जयदेव विद्यालङ्कार (सम्वत् १९९१-१९९३)।
सुश्रुतसंहिता; मोतीलाल बनारसीदास (१९३३)।
अष्टाङ्गहृदय; निर्णय सागर प्रेस (१९३३)।
अष्टाङ्ग संग्रह;
हारीतसंहिता; वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई (सं० १९६२)।
काश्यपसंहिता, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई (१९३८)।
भैषज्यरत्नावली; जयदेव विद्यालङ्कार (१९३२)।
रसेन्द्रसारसंग्रह; विद्याधर विद्यालङ्कार (१९३६)।
चक्रदत्त; सदानन्द (सम्वत् १९८८)।
भावप्रकाशनिघण्टु; वेङ्कटेश्वर प्रेस (सम्वत् १९७९)।
कैयदेवनिघण्टु; सुरेन्द्र मोहन द्वारा सम्पादित (१९२८)।
मदन विनोद निघण्टु; मदनपाल (सम्वत् १९६८)।
वङ्गसेनसंहिता; नवलकिशोर प्रेस (१९०४)।

इत्योम्

सर्वे सन्तु निरामयाः

इस पुस्तक मिलने के पते—

१ विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

२ हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट,
बादामी बाग़, लाहौर।

३ पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी,
अमृतसर।